हे राम ! हे राम !

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

—हे राम! हे राम!—

गांधीजी के प्रेरणादायक प्रसंग

•

सम्पादक

विष्णु प्रभाकर

•

१९८१

सस्ता साहित्य मंडल,
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान
का संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक [illegible] [illegible] द्वारा '[illegible]' मूल्य
पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है।

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने से समझ में आ जाती है इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक है।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

विचार जबतक आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। आचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहां विचार और आचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मो० क० गांधी

हे
राम !
हे राम ! !

: १ :

हे राम ! हे राम !!

तीस जनवरी १९४८ की संध्या को प्रार्थना-स्थल की ओर जाते हुए गांधीजी को दस मिनट की देर हो गई। इस बात पर अपनी नाराजगी प्रकट करते हुए उन्होंने मनु से कहा, "तुम लोग ही मेरी घड़ी हो। अब मैं घड़ी को भला क्यों छूने लगा ?"

कुछ समय से गांधीजी अपनी घड़ी में समय नहीं देखते थे। मनु आदि जो उनके साथ थे, वे हो समय से एक के बाद दूसरा काम निपटा देते थे। उनकी घड़ी में चाबी भी उन्हींमें से कोई दे देता था। इस कारण मनु ने कहा, "बापूजी, आपकी घड़ी बेचारी रो रही है। आप उसे छूते भी नहीं।"

विनोद के स्वर में गांधीजी बोले, "तुम लोग ही मेरी घड़ी हो। लेकिन मुझे प्रार्थना में जो देर हुई है, वह मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

उसके बाद भोजन में कुछ समय से दूध आदि तरल पदार्थों की जो मात्रा बढ़ाई गई थी, उसको घटाने का आदेश दिया। अन्न अभी खाना शुरू नहीं किया था। बोले, "तरल पदार्थों की मात्रा अब कम करनी है।"

इस तरह बातें करते-करते वह प्रार्थना-स्थल की सीढ़ियों

तक पहुंच गये । ऊपर चढ़ते ही उन्होंने फिर कहा, "आज प्रार्थना में दसेक मिनट की जो देर हो गई, इसमें दोष तेरा भी है। नर्स का यह धर्म है कि वह बीमार का हर काम समय पर करने की सावधानी रखे। किसी बीमार को दवा पिलाने का समय हो गया हो, तो उस समय अगर नर्स यह सोचे कि उसके पास मैं कैसे जाऊं, मेरे जाने से उसके आराम में बाधा पहुंचेगी, तब तो वह बेचारा मर ही जायगा। प्रार्थना की बात भी ऐसी ही है। एक मिनट की भी देर प्रार्थना में हो तो मुझे बहुत बुरा लगता है।"

मनु उस समय गांधीजी के दाईं ओर थी। उनका दाहिना हाथ उसके कंधे पर था। वह कुछ सीढ़ियां चढ़े ही थे कि एक तन्दुरुस्त युवक खाकी कपड़े पहने और हाथ जोड़े हुए लोगों की भीड़ को चीरता हुआ तेजी से मनु के पास आया। वह समझी कि वह युवक गांधीजी के चरण छूना चाहता है। प्रतिदिन बहुत-से लोग ऐसा ही किया करते थे। लेकिन गांधीजी को यह सब पसन्द नहीं था। इस-लिए मनु ने उस युवक को रोककर कहा, "भाई, बापूजी को वैसे ही दस मिनट की देर हो गई है, आप क्यों उन्हें सता रहे हैं ?"

उस युवक ने कुछ भी नहीं सुना, बल्कि मनु को इतने जोर से धक्का दिया कि उसके हाथ में थूक-दानी और नोट-बुक आदि जो चीजें थीं, वे नीचे गिर गईं। लेकिन उनकी चिन्ता किये बिना वह उस युवक से जूझती रही। हां, जब माला नीचे गिरी तो वह उसे उठाने के लिए नीचे झुकी।

उसी समय एक के बाद एक धड़ाधड़ तीन गोलियां छूटीं। एकाएक वातावरण में धुंआ भर उठा और अन्धकार छा गया। और गांधीजी हे "रा...म ! हे...रा...म !!" बोलते-बोलते जिस स्थिति में दोनों हाथ जोड़े चल रहे थे उसी स्थिति में धरती पर गिर पड़े।

इस समय अनेक लोगों ने गांधीजी को पकड़ने का प्रयत्न किया, लेकिन सब व्यर्थ। मनु तो समझ भी न पाई कि यह सब क्या हो रहा है। गोलियों की भयानक आवाज बिल्कुल उसके कान के पास ही हुई थी, इसलिए उसके कान बहरे-जैसे हो गये थे।

उस समय की स्थिति का शब्दों में वर्णन करना बड़ा कठिन है। गांधीजी के सफेद वस्त्रों के बीच से खून की धार बह निकली थी। नीचे की धरती खून से भर गई थी। उनके दोनों हाथ वैसे ही नमस्कार की मुद्रा में जुड़े हुए थे, मानो जाते-जाते वह सबसे क्षमा मांग रहे हों। उस समय उनकी घड़ी में ठीक पांच बजकर सत्रह मिनट हुए थे। उनकी मुख-मुद्रा ऐसी लग रही थी, मानो हरी घास की शैया पर धरती मां की गोद में गहरी नींद ले रहे हों।

: २ :

रंग कैसा भी हो, खादी होगी तो अच्छी लगेगी

उस दिन एक अंग्रेज महिला गांधीजी से मिलने के लिए आईं। उन्होंने पहले ही अनुमति ले ली थी। उन्होंने काले रेशम की पोशाक पहन रखी थी। गांधीजी ने पूछा, "यह काली पोशाक क्यों ?"

वह बहन कुछ लज्जित तो हुईं, पर बोलीं, "मेरी एक बहन पेरिस में रहती है। उससे मैंने कहा है कि वह सदा मुझे हर ऋतु में नई पोशाक भेज दिया करे। यह पोशाक पेरिस का सबसे नया फैशन है। मुझे लाज तो आती है, परन्तु क्या करें, हम तो ऐसे ही हैं।"

फिर इधर-उधर की बातें करके बोलीं, "सरोजिनी देवी ने मुझे खादी की कुछ चीजें दिखलाई हैं। वे भी मैं पहनती हूं।"

गांधीजी बोले, "तब तो यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि आप मुझसे मिलने खादी की पोशाक पहनकर नहीं आईं और यह पोशाक पहनकर आई हैं !"

यह सुनकर वह बहन और भी लज्जित हुईं। बोलीं, "अरे, रे, मैं तो सोचती थी कि आपसे मिलने आने के लिए मुझे बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े पहनने चाहिए अब तो। मैं यह

पोशाक पहनकर आई हूं, फिर आगे कभी आऊंगी, तो खादी के वस्त्र पहनकर आऊंगी। जरा पीले-से रंग के हैं, सफेद नहीं। आपको अच्छे लगेंगे।"

गांधीजी ने कहा, "रंग कैसा भी हो, खादी होगी तो अच्छी ही लगेगी।"

: ३ :

कोई भी मां अपने बच्चे को अपने से दूर करना पसन्द करेगी ?

धुनना-कातना सिखाने के लिए बलवन्तसिंह तुकड़ोजी महाराज के पास मोझरी आश्रम गये थे। लेकिन मुश्किल से आठ-दस दिन ठहरे होंगे कि तेज बुखार आ गया। गांधीजी के आदेश के अनुसार उन्हें तुरन्त सेगांव वापस भेज दिया गया। कार अभी आकर खड़ी हुई ही थी कि गांधीजी तुरन्त बलवन्तसिंह के पास पहुंचे। उस दिन सोमवार था, लेकिन मौन तोड़कर वह हँसते-हँसते बोले, "क्यों, खूब मिर्च खाई ! बीमार क्यों पड़ गये ?"

बलवन्तसिंह ने उत्तर दिया, "मिर्च तो नहीं खाई, लेकिन वहां खाने-पीने की व्यवस्था अच्छी नहीं थी। इसलिए मैंने केले खूब खाये, जिससे मुझको कब्ज हो गया। लगता है, जैसे पेट में जहर पैदा हो गया हो। आप उसे निकालने का प्रबन्ध कीजिये।"

बस, अब तो गांधीजी का उपचार आरम्भ हो गया। बलवन्तजी को खूब बुखार चढ़ा हुआ था। शरीर से बदबू आ रही थी, लेकिन गांधीजी उन्हें उठवाकर स्नानागार में ले गये। अपने हाथ से एनीमा दिया। स्पंज किया, कपड़े बदले और वर्धा से डाक्टर को बुलवाया। उन्होंने देखकर कहा, "इनका हृदय बहुत दुर्बल है। बहुत संभाल रखने की जरूरत है। कभी भी बन्द हो सकता है।"

यह सुनकर बलवन्तसिंह ने गांधीजी से कहा, "आपके पास काम है। मेरे कारण उसमें अड़चन होगी, इसलिए मुझे वर्धा के सिविल हास्पिटल में भेज दें तो कैसा रहे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "कोई भी मां अपने बच्चे को अपने से दूर करना पसन्द करेगी ? या कोई भी लड़का मां को तकलीफ होगी, इसलिए मां से दूर जाने का विचार करेगा, तो तुम्हीं ऐसा क्यों सोचते हो ? मेरे पास कितना भी काम हो, तो भी तुम्हारी सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं आयेगी। हां, तुमको मेरी सेवा में विश्वास नहीं हो, तो मैं तुमको रोकूंगा नहीं। तुरन्त जा सकते हो।"

बलवन्तसिंह ने कहा, "मुझे तो आपके काम के कारण संकोच हो रहा था, वैसे मैं जाना पसन्द नहीं करता।"

और गांधीजी का इलाज आरम्भ हो गया। प्यारेलाल सिर और पेट पर मिट्टी की पट्टी रखते, खानसाहब फलों का रस देते। सभी आवश्यक चीजें उनके पास रख दी गईं और साथ में एक घंटी भी रख दी गई कि किसी बात की आवश्यकता हो तो बजा दें। बलवन्तसिंह जब घंटी बजाते

और वहां कोई और न होता तो स्वयं गांधीजी उठकर आते । गांधीजी का नर्सिंग, प्यारेलालजी की मिट्टी की पट्टी बनाने की कुशलता, खानसाहब का मातृ स्नेह का मिठास घोलकर प्रेम से रस पिलाना और मीराबहन की देखरेख, ये जिसे मिलें उसके भाग्य का क्या कहना ! बहुत जल्दी ही बलवन्तसिंह का बुखार उतर गया ।

ज्यों-ज्यों तबीयत सुधरती, भूख भी बढ़ती । रोटी खाने को मन करता । गांधीजी कहते, "अगर तुम दस सेर भी दूध पियोगे तो मैं खुशी से पिलाऊंगा, लेकिन अगर तुम एक भी रोटी मांगोगे तो मुझे दुःख होगा ।"

भूख लगने पर वह मौसम्मी देते, मीठा नीबू देते, संतरा देते, ठोस चीज की आवश्यकता होती तो सेब देते । लगभग तीन महीने इसी प्रकार बीत गये । एक रोज थककर बलवन्तसिंह ने विजयाबहन से रोटी मांगी और उनकी आंख बचाकर आधी रोटी खा गये । शिकायत गांधीजी तक पहुंची । वह बोले, "अरे बलवन्तसिंह, चुराकर रोटी खाता है ?"

वह हँस पड़े । बलवन्तसिंह ने कहा, "बापूजी, चोरी नहीं की, लेकिन जोरी जरूर की है । क्या करूं, रोटी खाये बिना मेरा शरीर खेती का काम नहीं करता है और इस तरह बैठा तो कबतक रहूंगा ?"

गांधीजी फिर हँस पड़े । लेकिन रोटी खाने की आज्ञा अब भी नहीं दी । जब वह प्रवास पर जाने लगे, तब बलवन्तसिंह ने उनसे कहा, "अबतक आपके लिए जो फल आते थे, उनसे मेरा भी गुजारा हो जाता था, लेकिन जब आप यहां

नहीं होंगे तो फल कोई भेजेगा नहीं और मैं भूखों मरूंगा ।"

गांधीजी हंसकर बोले, "बात तो ठीक है, लेकिन जितने फल मिलें, उतने खाकर यदि भूख बाकी रहे, तो रोटी खा सकते हो ।"

: ४ :

मेरे साथ मेरा ईश्वर है

नोआखाली-यात्रा के दौरान गांधीजी पनियाला में ठहरे हुए थे । वहां खूब वर्षा हो रही थी । फिर भी शाम की प्रार्थना के समय सब लोग निश्चित भाव से बैठे रहे । मनु ने बापूजी को एक चादर उढ़ा दी, लेकिन फिर भी वह भीगने से नहीं बचे । मुसलमान भाई उस सभा में काफी संख्या में आये थे । भजन के बाद मनु के दिमाग में एकाएक एक नई धुन आ गई । उस दिन उसने उसीका उपयोग किया । उपस्थित व्यक्तियों ने भी सुन्दर ढंग से उस धुन को गाया । वह धुन थी :

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम ।
ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ।।

मनु ने यह धुन गाई तो सही, परन्तु गांधीजी से तो उसने पूछा ही नहीं था, इसलिए वह मन-ही-मन डर रही थी । लेकिन जब प्रवचन में उन्होंने इस धुन का बड़े सुन्दर ढंग से उल्लेख किया तो उसे बड़ा सन्तोष हुआ ।

लौटते समय उन्होंने मनु से कहा, "आज की धुन मुझे

बड़ी मधुर लगी। लोगों को भी पसन्द आई। तुमने इसे कहां से सीखा ? या स्वयं ही बना लिया ?"

मनु ने उत्तर दिया, "पोरबन्दर में सुदामा के मन्दिर में एक सभागृह है। वहां एक कथावाचक कथा कहा करते थे। कथा समाप्ति के बाद वहींपर यह धुन गाई जाती थी। वहीं मैंने यह धुन सुनी थी। आज अचानक दिमाग में आ गई।"

गांधीजी बोले, "ईश्वर ने ही तुम्हें यह धुन सुझाई। मेरे यज्ञ में ईश्वर किस खूबी से मदद दे रहा है, उसपर मेरी श्रद्धा अधिकाधिक प्रबल होती जा रही है। चारों ओर से जब मेरे कामों का विरोध हो रहा है, तब मैं अधिक दृढ़ होता जा रहा हूं। मेरे साथ मेरा ईश्वर ही है और वह मुझे कितनी सहायता दे रहा है, यह तो तुम देखो। आज की यह रामधुन इस बात की साक्षी है। अब तुम रोज यही धुन गवाना। ठीक समय पर प्रार्थना में इसने नये प्राणों का संचार किया है।"

: ५ :

मनुष्य को बहुत सावधानी से बरतना चाहिए

वर्धा-आश्रम में श्री हरिभाऊ उपाध्याय के एक मित्र रहते थे। इनकी एक लड़की थी। उससे एक मित्र

विवाह करना चाहते थे। वह जानना चाहते थे कि लड़की भी चाहती है या नहीं। उन्होंने इस सम्बन्ध में श्री हरिभाऊ-जी से कहा। लड़की बालिग थी। हरिभाऊजी को उससे पूछना आपत्तिजनक नहीं लगा, लेकिन जब उसके अभिभावकों को इस बात का पता चला, तो उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इस सम्बन्ध को भी पसन्द नहीं किया।

स्वाभाविक था कि यह बात गांधीजी तक पहुंचती। सबकुछ सुनने के बाद उन्होंने हरिभाऊजी से पूछा, "यदि कोई तुम्हारी लड़की से इस तरह तुमसे बिना पूछे बातचीत करे, तो क्या तुम्हें अच्छा लगेगा ?"

हरिभाऊजी ने कहा, "जैसी आत्मीयता मैं इस लड़की के अभिभावकों से रखता हूं वैसा ही कोई व्यक्ति पूछे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि उसमें दुर्भावना का कोई कारण नहीं हो सकता।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तो मैं कहता हूं, तुम पिता होने के नाते अपनी लड़की के प्रति अपने कर्तव्य से च्युत होते हो। इसी भ्रम में पड़कर तुमने लड़की से बातचीत की। उसके अभिभावकों को काफी दुःख हुआ है। इनसे जाकर तुम्हें क्षमा मांगनी चाहिए।"

हरिभाऊजी ने कहा, "मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि इसमें उन्हें कोई आपत्ति होगी। ऐसे मामलों में प्रायः माता-पिता सीधे लड़की से बात भी नहीं करते। मुझ-जैसे मित्रों से ही पुछवाते हैं। अब यदि उन्हें दुःख हुआ है, तो मेरा धर्म है कि उनका दुःख जिस तरह हो, उसे दूर

करूं ।"

गांधीजी बोले, "कई बार सद्भावना से भी हम ऐसे काम कर जाते हैं, जिनपर आपत्ति हो सकती है। अतः मनुष्य को बहुत सावधानी से बरतना चाहिए। जैसा हम अपने साथ चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हम दूसरों के साथ करें, यह नियम सामान्यतः ठीक है, परन्तु सच्चा नियम यह है कि हम दूसरों से आजादी से काम लें और दूसरों को अपने से ज्यादा आजादी लेने-देने की प्रवृत्ति रखें।"

: ६ :

क्या समझे ?

एक बार श्री हरिभाऊ उपाध्याय गांधीजी के साथ ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। हरिभाऊजी ने कुछ प्रश्न किये थे। उन्हींके उत्तर देते हुए वह उन्हें सूक्ष्मता से कुछ समझा रहे थे कि एकाएक हरिभाऊजी किसी बात पर विचार करने लगे। अब उनका ध्यान उस बात पर था और बापू अपनी बात कह रहे थे। हरिभाऊजी फिर भी बराबर 'हां-हां' किये जाते थे।

लेकिन बापू तो समझ गये थे कि इस समय वह किसी और ही दुनिया में पहुंच गये हैं। सहसा उन्होंने पूछा, "समझे ?"

हरिभाऊजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "हां।"

गांधीजी हँस पड़े और बोले, "क्या समझे ?"

अब हरिभाऊजी को होश आया। वह तो कुछ भी नहीं समझे थे। जवाब क्या देते ? झेंपकर इतना ही बोले, "बापू, मैं तो किसी और ही विचार में पड़ गया था। यूं ही 'हां-हां' करता रहा।"

गांधीजी ने कहा, "सो तो मैंने देख लिया था, तभी तो तुमसे पूछा। मैं बात करते समय सामनेवाले की आंखों और चेहरे को देखता रहता हूं। जब यह मालूम होता है कि वह अनसुनी कर रहा है तो या तो बातचीत बन्द कर देता हूं या विषय ही बदल देता हूं।"

: ७ :

तुम्हारे ब्रह्मचर्य में जरूर कमी है

जोधपुर के एक कार्यकर्ता थे, सच्चे और खरे। विवाह हुए अभी दो-चार साल ही हुए थे कि उन्होंने ब्रह्मचर्य से रहने का नियम बना लिया। ईमानदारी से उसके पालन की कोशिश भी करते थे, लेकिन पत्नी का सहयोग उन्हें नहीं मिल रहा था। विवश होकर बेचारी संयम रखती थी, लेकिन जबर्दस्ती का संयम तो मनुष्य को पागल कर देता है। उस बहन के साथ यही हुआ। उसे हिस्टीरिया के दौरे पड़ने लगे। उदास चेहरा, शून्य में झांकती आंखें, अपनी पत्नी की यह दशा देखकर वह भाई भी परेशान हो उठे। उन्होंने श्री हरिभाऊ

उपाध्याय से सलाह मांगी।

श्री हरिभाऊ ने कहा, "यह ब्रह्मचर्य आपको फलेगा नहीं। सीधे ढंग से अपना गृहस्थ जीवन बिताइये।"

लेकिन वह भाई ज़रा भी सन्तुष्ट नहीं हुए। बात आखिरकार गांधीजी के सामने पहुंची। उन्होंने भी सारी स्थिति को समझकर कहा, "तुम्हारा ब्रह्मचर्य मुझे कच्चा मालूम होता है।"

पति-पत्नी दोनों ने उत्तर दिया, "नहीं, जबसे लिया है तबसे बिलकुल भंग नहीं हुआ।"

गांधीजी उस भाई से बोले, "ठीक है, नहीं हुआ है, मगर उसका असर तुम्हारी पत्नी के मन पर अभी तक नहीं हो पाया है। सच्चे ब्रह्मचर्य का यह परिणाम अवश्य निकलना चाहिए कि जो उसके सम्पर्क में आये उसका मन विकारों की ओर से बिलकुल हट जाय। यह तो हर समय तुम्हारे साथ रहती है, फिर भी गृहस्थ जीवन के लिए इसका मन व्याकुल है। इसका अर्थ हुआ, तुम्हारे ब्रह्मचर्य में जरूर कमी है। इसलिए तुम्हें आग्रह छोड़कर इसको सन्तोष देना चाहिए।"

नहीं, मैं जाऊंगा

गांधीजी मद्रास गये थे। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने उन्हें अदियार आने का निमन्त्रण दिया था। अदियार थियोसोफिकल सोसाइटी का केन्द्र है। गांधीजी श्री नटेसन के साथ वहां गये। श्रीमती बेसेन्ट ने उनका भाव-भीना स्वागत किया। गांधीजी श्रीमती बेसेन्ट का बहुत आदर करते थे। उस महान महिला नें इस देश की सेवा के लिए अपनेको समर्पित कर दिया था। इस बात के वह बहुत प्रशंसक थे।

डा० बेसेन्ट ने घूम-घूमकर गांधीजी को सब स्थान दिखाये। शानदार हाल, सजे हुए कमरे। उसके बाद वह एक बहुत ही साधारण बरामदे में गांधीजी को ले गईं। वहां अछूतों के लिए स्कूल लगता था। पंचम जाति में शिक्षा-प्रचार के लिए श्रीमती बेसेन्ट ने बहुत काम किया था। इस क्षेत्र में सम्भवतः वह पहली ही व्यक्ति थीं, लेकिन गांधीजी सोसाइटी के सुन्दर और महान भवन तथा इस स्कूल के साधारण से घर में इतना अन्तर देखकर चकित रह गये। उनके लिए यह अन्तर असह्य था।

उनका विचार रात-भर यहीं रहने का था, लेकिन यह सब देखकर उन्हें इतना दर्द हुआ कि तुरन्त वहां से जाने की जिद करने लगे। श्री नटेसन ने कहा, "आपके जाने से श्रीमती

बेसेन्ट को बहुत दुःख होगा। वह मुझसे भी नाराज हो जायंगी।"

लेकिन गांधीजी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। उन्होंने कहा, "नहीं, मैं जाऊंगा।" और बहुत रात गये, उन्होंने अदियार छोड़ दिया।

: ६ :

हेतुओं की शुद्धता से असत्य सत्य नहीं हो सकता

सन् १९१८ में ब्रिटेन ने भारत को कुछ अधिकार देने के लिए मांटेग्यु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित की थी। उन दिनों कांग्रेस नरम और गरम दलों में बंटी हुई थी। कुछ लोग, जिनमें श्री जमनादास द्वारिकादास भी शामिल थे, चाहते थे कि कांग्रेस की जिस विशेष बैठक में इस रिपोर्ट पर विचार हो, उसमें दोनों दलों के लोग आवें। नरम दलवालों ने इस प्रस्ताव का कुछ अधिक स्वागत नहीं किया। श्री जिन्ना ने जमनादासजी से कहा, "सर दीनशा पेटिट से मिलो। वह मॉडरेट हैं, मगर उनके विचार प्रगतिशील हैं। वह अगर स्वागत-समिति के सदस्य हो जाते हैं, तो दूसरे मॉडरेट भी उसमें शामिल हो जायंगे।"

श्री दीनशा पेटिट ने स्वागत-समिति का सदस्य बन जाना स्वीकार कर लिया, लेकिन साथ ही एक शर्त भी लगा

दी कि अगर दूसरे मॉडरेट सदस्य आते हैं, तो वह सदस्य के तरीके से रहेंगे, नहीं तो नहीं रहेंगे।

जमनादासजी ने श्री जिन्ना को यह सूचना दी और फिर उनके कहने पर दूसरे व्यक्तियों को भी बता दिया, परन्तु उनकी शर्त के बारे में किसीसे कोई चर्चा नहीं की।

लेकिन शीघ्र ही कुछ लोगों को इस शर्त का पता लग गया और उन्होंने कमेटी में श्री जमनादास के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पेश कर दिया। श्री जमनादास ने अपने भाषण में इस आरोप को स्वीकार किया, लेकिन साथ ही यह भी कहा, "ऐसा करने का मेरा उद्देश्य यह था कि कांग्रेस का संयुक्त रूप बना रहे। सब मिलकर विचार करें, जिससे देश का लाभ हो।"

प्रस्ताव पास नहीं हो सका, लेकिन गांधीजी को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने जमनादासजी को एक पत्र लिखा, "हेतुओं की शुद्धता से असत्य सत्य नहीं हो सकता। तुम्हारा भाषण पढ़कर मुझे बहुत दुख हुआ। मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारे इस दोष के निवारण के लिए मैं दो दिन का उपवास करूं। तुमको भी मैं सलाह देता हूं, आज्ञा तो नहीं दे सकता, कि तुम भी अपने दोष के प्रायश्चित्त के लिए मेरे साथ दो दिन का उपवास करो।"

: १० :

मेरा जीवन यदि पसंद है तो मेरा काम करो

बंगाल-प्रवास के समय गांधीजी दार्जिलिंग जा रहे थे। एक वकीलसाहब भी उनके दल के साथ थे। मार्ग में एक स्टेशन पर वह उतरे। वापस चढ़ते समय सहसा गाड़ी चल पड़ी और वह पटरी से फिसलकर नीचे गिर पड़े। सौभाग्य से उनके लड़के ने उन्हें गिरते हुए देख लिया। उसने जंजीर खींची और लगभग २०० गज आगे जाकर गाड़ी खड़ी हो गई। देखा, वकीलसाहब के चोट नहीं आई है।

गाड़ी चली। दूसरा स्टेशन आया। वकीलसाहब ने गांधीजी के पैर पकड़ लिये। बोले, "आज आप इस गाड़ी में थे, इसीलिए मैं बच गया, नहीं तो मैं मर जाता।"

दुर्घटना की कहानी सुनकर गांधीजी बोले, "इसे इस प्रकार भी तो कहा जा सकता है कि मैं इस गाड़ी में था, इसीलिए यह दुर्घटना हुई। मैं न होता तो शायद यह दुर्घटना न होती।"

पता नहीं, वकीलसाहब इस मजाक का रहस्य समझे या नहीं, लेकिन गांधीजी इस प्रकार के वहमों का समर्थन नहीं करते थे। उन्होंने इतना ही कहा, "मेरा जीवन यदि आपको पसन्द है, तो मेरा काम करो। ऐसा करके ही मेरे प्रति आदर प्रकट किया जा सकता है।"

: ११ :

उनका समय तो उससे भी अधिक पवित्र धरोहर है

मीराबहन (मिस मेडेलीन स्लेड) आश्रम में आई-आई थीं। महादेव देसाई ने उनसे फ्रेंच पढ़ने का निश्चय किया, लेकिन दूसरे ही दिन उन्हें पता लगा कि गांधीजी को इस बात से बहुत आश्चर्य हुआ है। वह अभी दूसरे दिन का पाठ पूरा भी न कर पाये थे कि गांधीजी ने उन्हें बुला भेजा। वह कांप उठे। डरते-डरते उनके पास पहुंचे। गांधीजी तो अपनी नाराजगी छिपाने में बहुत कुशल थे। उन्होंने हँसते हुए पूछा, "तुमने फ्रेंच सीखना शुरू किया है?"

महादेवभाई के स्वीकार करने पर बोले, "कल जब वह तुम्हारे साथ समय का निश्चय कर रही थीं तो मैंने सोचा था कि तुम उन्हें हिन्दी पढ़ाने के लिए जाओगे, लेकिन अब पता लगा कि तुम उनसे फ्रेंच सीखते हो।"

इसके बाद उन्होंने प्रश्न-पर-प्रश्न पूछने शुरू कर दिये। "तुमने फ्रेंच क़िसलिए सीखनी शुरू की है? मिस स्लेड यहां पर हैं, इसलिए? या तुम रोम्यां रोलां को फ्रेंच भाषा में पढ़ना चाहते हो? या इसलिए कि फ्रेंच भाषा में पत्र-व्यवहार करना चाहते हो?"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "जी नहीं, फ्रेंच सीखने की

मेरे मन में बहुत दिनों से इच्छा थी। मेरे एक फ्रेंच जाननेवाले मित्र ने मुझसे कहा था कि यह भाषा सीखना आसान भी है और उपयोगी भी।"

गांधीजी कुछ कठोर हो उठे। एक-दो मिनट तक कुछ भी नहीं बोले। फिर पूछा, "इसके सीखने में कितने दिन लगेंगे?"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "मुझसे कहा गया है कि छः महीने लगेंगे। एक घंटा रोज पढ़ना होगा।"

गांधीजी बोले, "लेकिन जब हम लोग सफर में होंगे तब?"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "तब मुश्किल है, लेकिन फिर भी कुछ-न-कुछ समय निकाल लूंगा।"

गांधीजी हार माननेवाले नहीं थे। बोले, "तुमको यकीन है, तुम ऐसा कर सकोगे? तुम फ्रेंच सीखना चाहते हो, इसलिए तुम्हें मुझे एक घंटा रोजाना छुट्टी देनी होगी?"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं किसी तरह समय निकाल लूंगा।"

गांधीजी बोले, "तुम समय नहीं निकाल सकोगे, लेकिन चुरा अवश्य लोगे।"

अब तो महादेवभाई क्या कहते! उन्हें यह तथ्य स्वीकार करना ही पड़ा और कहना पड़ा, "फ्रेंच सीखने में जितना समय लगेगा उतना समय मैं कातने में और लगा सकूंगा।"

गांधीजी ने कहा, "हां, और भी बहुत-सी बातें हैं। जब हम जीवन-मरण के युद्ध में लगे हुए हैं, तब तुम फ्रेंच सीखने

का खयाल कर ही कैसे सकते हो ? स्वराज्य मिल जाने के बाद तुम जितनी चाहे फ्रेंच पढ़ो । और तुम जानते हो, मिस स्लेड अपना सबकुछ छोड़कर यहां आई हैं । इस देश की सेवा करने का उन्होंने निश्चय किया है, इसलिए उनके समय का हरेक मिनट बहुत महत्व रखता है । हमारा कर्तव्य है कि जितना भी बन सके, हम उन्हें कुछ दें । वह हमारे बारे में सबकुछ जानना चाहती हैं । इसलिए उन्हें हिन्दुस्तानी सीख लेनी चाहिए । हम लोग उन्हें अपने समय का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करने में मदद न करेंगे तबतक वह यह कैसे कर सकेंगी ? हमारा समय बड़ा धार्मिक महत्व रखता है, लेकिन उनका समय तो उससे भी अधिक पवित्र धरोहर है । इसलिए उसका फ्रेंच सीखने में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए । मैं तो तुमसे यह आशा रखता हूं कि तुम उन्हें संस्कृत, हिन्दी या ऐसी ही कोई दूसरी भाषा सिखाने में रोजाना एक घंटे का समय दोगे । कल तुम उनके पास जाना और अपनी गलती स्वीकार करके फ्रेंच पढ़ने के स्थान पर उनके साथ श्लोक पढ़ना ।"

बड़े मंदिर से एक सोने का बर्तन क्यों नहीं उठा लाते ?

त्रिवेन्द्रम (अब तिरुवनन्तपुरम्) में 'हरिजन सेवक संघ' का एक छोटा-सा, किन्तु व्यवस्थित छात्रालय हरिजन लड़कों के लिए चलता था। १९३७ में जब गांधीजी उधर गये, तो वह इस छात्रालय में भी पधारे थे। लड़कों को दी जानेवाली खुराक की हर तफसील को उन्होंने देखा और पूछा, "बच्चों को छाछ भी दी जाती है या नहीं ? नारियल का तेल घर पर ही पेरा जाता है या बाजार से आता है ?"

अधिकारी ने बताया, "हर बच्चे को पाव-भर मट्ठा दिया जाता है।"

गांधीजी ने पूछा, "पर उसमें दूध या मक्खन की अपेक्षा अधिकतर पानी ही होता है न !"

यह सुनकर सब कहकहा मारकर हँस पड़े। गांधीजी बच्चों की ओर मुड़े और पूछा, "गृहपति आपके साथ खाना खाते हैं या अपने घर पर ?"

गृहपति ने गांधीजी के विनोद का आनन्द लेते हुए उत्तर दिया, "मैं सारा दिन यहीं रहता हूं। रात के दस बजे घर जाता हूं।"

गांधीजी विनोद को आगे बढ़ाते हुए बोले, "तब तो घर

लौटने पर आपको कुछ खाना ही पड़ता होगा।"

गृहपति ने उत्तर दिया, "हम ट्रावनकोर के लोग रात को देर में खाना नहीं खाया करते।"

गांधीजी बोले, "तब तो बड़ी खुशी की बात है।"

इतने में श्री गोविन्दन ने मूल प्रश्न पर गृहपति का पक्ष लेते हुए कहा, "यहां शुद्ध दूध मिलना असम्भव है। इसलिए मट्ठे में तो पानी ही अधिक होता है। क्या करें ? दो-एक गायों की सख्त जरूरत है। क्या आप गुजरात से भिजवा सकते हैं ?"

उसी विनोद-वृत्ति में गांधीजी ने जवाब दिया, "जरूर भिजवा सकता हूं। लाइये रुपये, मैं फौरन भिजवाये देता हूं।"

"पर हमारे पास रुपये कहां हैं ?"

हँसते-हँसते गांधीजी ने कहा, "तब राज्य के उस बड़े मन्दिर से एक सोने का बर्तन क्यों नहीं उठा लाते ? चुराइये नहीं, ट्रावनकोर जैसे हिन्दू राज्य में चोरी का तो नाम ही नहीं होना चाहिए, पर किसी अच्छे काम के लिए, जैसे हरिजनों को खिलाने के लिए, भीख मांगना कोई नई बात नहीं होनी चाहिए। जाइये, अधिकारियों से जाकर कहिये कि अब तो छुआछूत मिट गई है। ब्राह्मणों को तो आप दूध पिला सकते हैं। क्या हरिजन बालकों को पीतल के बर्तनों में मट्ठा भी नहीं पिला सकते ?"

: १३ :

तुम इंसान के साथ हिंसा का बर्ताव करते हो !

सन् १९१९ की बात है। गांधीजी श्री दयाशंकरभाई जगजीवनभाई के निवास-स्थान पर ठहरे हुए थे। उनके कई शिष्य भी उनके साथ थे। एक दिन वह जब किसी सभा में भाग लेकर लौटे तो उनके मंत्री महादेव देसाई ने उनसे कहा, "आपकी गैरहाजिरी में यहां एक अशोभनीय घटना हो गई है। आपके शिष्य श्री...ने श्री दयाशंकरभाई जगजीवनभाई के सेवक को खूब मारा।"

गांधीजी बहुत दुखी हुए। पूछा, "क्यों मारा ?"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "क्योंकि वह सेवक उनको समय पर गर्म पानी नहीं पहुंचा सका था।"

यह सुनकर गांधीजी को बड़ी पीड़ा हुई। अपने कमरे में जाकर उन्होंने उस शिष्य को बुलाया। कहा, "यह तुमने क्या किया ? यह तो दो प्रकार का पाप तुमने कर डाला। हम जिनके मेहमान हैं, उनके सेवक के साथ तुमने बुरा बर्ताव किया। तुमने मनुष्य के साथ हिंसा बरती। तुम मंदिर में जाते हो। मूर्ति में ईश्वर मानकर उसकी पूजा करते हो, लेकिन इंसान, जो ईश्वर का जीवित-जाग्रत मन्दिर है, उसको तुम मारते हो ! उसके साथ हिंसा का बर्ताव करते हो !

बड़े शर्म की बात है। इसके लिए मैं अभी से दो दिन का उपवास करूंगा और तुम्हारी भी सजा यही है कि तुम भी दो दिन का उपवास करोगे।"

: १४ :

यह समझकर कि यह अच्छा काम नहीं है

नियम-पालन के प्रति गांधीजी का बहुत अधिक आग्रह रहता था। लेकिन वह यह भी जानते थे कि मनुष्य दुर्बल है। यह दुर्बलता उनके मन में करुणा ही पैदा करती थी। एक बार एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला, "बापूजी, आप तो ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं, लेकिन मुझसे नहीं रहा जाता। साथ ही मैं सन्तान भी नहीं चाहता।"

उन दिनों गर्भनिरोध का तरीका शुरू ही हुआ था। कोई भद्र पुरुष सहज ही उसका प्रयोग करने की हिम्मत नहीं रखता था। लेकिन इस व्यक्ति ने गांधीजी से कहा, "बापूजी, सन्तान न हो, इसका एकमात्र रास्ता मेरे लिए गर्भनिरोध का ही रह गया है।"

गांधीजी ने सबकुछ सुना और बोले, "तुझसे नहीं रहा जाता! कोई बात नहीं। तू कृत्रिम गर्भनिरोध की चीजों का इस्तेमाल करना चाहता है तो कर, लेकिन यह समझकर कर कि यह अच्छा काम नहीं है।"

गांधीजी ने उसे इच्छानुसार बरतने की छूट दे दी, लेकिन उसे बचा भी लिया। निश्चय ही जब वह इस काम को बुरा काम समझकर करेगा तो कभी तो उससे बचेगा ही। बुरा काम जानबूझकर करना कौन पसन्द करता है?

: १५ :

तुम्हें यदि हिंसा में विश्वास है तो मैदान में आकर कहो

सन् १९२९ में भागलपुर में श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में एक विद्यार्थी सम्मेलन हुआ था। उसी समय कुछ स्वयंसेवकों ने गांधीजी से भेंट की और कहा, "महात्माजी, अहिंसा पर अभी विश्वास नहीं होता। कानपुर में गदर आदि के पर्चे हमने भी बांटे थे। ये पर्चे हमें श्री गणेशशंकर विद्यार्थी आदि व्यक्तियों से मिलते थे।"

गांधीजी ने पूछा, "वे लोग तुमको गदर कैसे पढ़ाते थे?"

एक स्वयंसेवक मे उत्तर दिया, "छिपाकर।"

यह सुनकर गांधीजी बोले, "यह तो बहादुर सिपाही और बहादुर देशभक्त का काम नहीं है। तुम्हें यदि हिंसा में विश्वास है, तो मैदान में आकर कहो।"

एक स्वयंसेवक ने उत्तर दिया, "यह तो सीधे-सीधे फांसी पर चढ़ जाने का रास्ता है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम्हारे फांसी पर चढ़ जाने से अगर दस-बीस और आदमी फांसी के तख्ते पर चढ़ जायं तो समझो, हिंसा काम कर गई, नहीं तो नहीं। मैं तो अहिंसा की तलवार, जिस पर दोनों तरफ धार है, लेकर लड़ रहा हूं। हिंसा की तलवार में तो एक ही ओर धार होती है। इसलिए वह ब्रिटिश सरकार का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।"

: १६ :

यह मेरा अक्षम्य अपराध है

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर-अधिवेशन से लौटकर गांधीजी ने सबके सामने शाम की प्रार्थना के समय प्रवचन देते हुए अपना एक पाप स्वीकार किया। उन्होंने कहा, "जो गलती मुझसे हुई, वह इसलिए अक्षम्य है कि कई वर्ष पहले ही मुझे इस बात का पता लग गया था। दरिद्रनारायण की सेवा का जिसने व्रत ले रखा है, उससे इस प्रकार की गफलत नहीं होनी चाहिए। हम लोग रोज जो दतौन इस्तेमाल करके फेंक देते हैं, उनको भी काम में लाया जा सकता है। यह विचार कई साल पहले मेरे मन में आया था, पर उसे कार्य रूप में परिणत करने के पहले ही मैं भूल गया। यही मेरा अक्षम्य अपराध है। इस्तेमाल की हुई दतौन को धोकर फिर धूप में सुखाने के लिए रख दिया जाय। इस तरह सुखाई हुई दतौन मजे में ईंधन के काम आ सकती है।"

पाप की यह कहानी सुनकर सब लोग चकित रह गये। उनकी कुछ समझ में नहीं आया। गांधीजी बोले, "आप शायद समझते हैं कि दतौन का इंधन एकदम नगण्य होगा। इन्दौर में चार-पांच व्यक्तियों ने अपनी-अपनी दतौनों को सुखाकर जितना ईंधन इकट्ठा किया था, उससे एक लोटा पानी गर्म हो गया था। अगर इसी तरह मगनवाड़ी में रहनेवाले सारे भाई-बहन अपनी-अपनी दतौनें सुखा लें तो क्या साल-भर की दतौन कुछ दिनों की उनकी रसोई पकाने का ईंधन नहीं दे सकतीं ? अगर एक दिन का भी काम चल सके तो क्या कम है ?"

अन्त में उन्होंने घोषणा की, "मगनवाड़ी के कुंए के पास एक बाल्टी टांग दी गई है। हर भाई और बहन को अपनी-अपनी इस्तेमाल की गई दतौनें अच्छी तरह पानी से धोकर उसमें डाल देनी होंगी। उसके बाद कोई एक व्यक्ति उनको धूप में सुखा दिया करेगा।"

: १७ :

सरकार से अपनी फीस वसूल करना मत भूलना

गांधीजी आगाखां महल में नजरबन्द थे। एक बार डा० गज्जर सरकार के आदेश पर उनकी जांच करने के लिए गये। उस समय गांधीजी उपवास कर रहे थे और उनकी

हालत चिन्ताजनक थी—चेहरा सूखा हुआ और आंखें धंसी हुई। देखकर डा० गज्जर को अच्छा नहीं लगा, लेकिन गांधीजी ने सदा की तरह मुस्कराते हुए पूछा, "क्या आप गुजरात के विख्यात वैज्ञानिक डा० के० गज्जर के पुत्र हैं ?"

डा० गज्जर ने उत्तर दिया, "जीहां।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "आप यहां कैसे आये ?"

डा० गज्जर ने उत्तर दिया, "सरकार ने मुझे आपकी परीक्षा करने के लिए भेजा है।"

गांधीजी बोले, "अगर सरकार ने आपको भेजा है, तो जो जी चाहे, आप कर सकते हैं।"

जांच का परिणाम चिन्ताजनक था। अपनी बैठक में डाक्टरों ने तय किया कि डा० गज्जर एक बार फिर जांच-पड़ताल करने के लिए आयें। जाते समय गांधीजी ने डा०गज्जर से कहा, "सरकार से अपनी फीस वसूल करना मत भूलना।"

डा० गज्जर ने समझा कि वह मजाक कर रहे हैं। इस-लिए वह मुस्कराने लगे। गांधीजी फिर बोले, "आप यहां मेरी खातिर नहीं आये हैं। सरकार आपको यहां लाई है। आपसे काम लेना चाहती है। उसके लिए उन्हें पैसे देने ही चाहिए।"

डा० गज्जर दो दिन बाद फिर आये, तबतक सारे शरीर में जहर भरने लगा था। किसी भी क्षण, कुछ भी हो सकता था, लेकिन हुआ कुछ नहीं। इक्कीस दिन के बाद ही गांधीजी ने उपवास छोड़ा। डा० गज्जर तभी उन्हें

देखने के लिए आये । जांच करने पर उन्होंने पाया कि उपवास के उन तीन सप्ताहों में अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे देकर ही वह अपने प्राण बचा पाये हैं । लेकिन गांधीजी को इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी । उन्होंने इतना ही पूछा, "क्या सरकार से तुमने अपनी फीस वसूल की है ?"

डा० गज्जर ने कहा, "मैंने इसपर अभी ध्यान नहीं दिया ।"

उन्होंने जोर देकर कहा, "नहीं, तुम्हें अपनी फीस लेनी ही चाहिए।"

: १८ :

तुम भाग क्यों आईं ?

गांधीजी के आश्रम में लड़कियां भी रहती थीं । एक दिन वह कहीं से लौट रहीं थीं कि मार्ग में कुछ नवयुवक उन्हें परेशान करने लगे । लड़कियां घबरा गईं और आश्रम की ओर भाग चलीं । प्रार्थना के बाद उन्होंने महात्माजी को इस घटना की सूचना दी । महात्माजी ने कहा, "तुम भाग क्यों आईं ? हिम्मत से वहीं ठहरना था ।"

एक लड़की ने उत्तर दिया, "यदि लड़कों ने हमारी बेइज्जती की होती तो ?"

गांधीजी बोले, "तो उनके मुंह पर दो-चार घूंसे जमा देने थे ।"

सुनकर लड़कियां चकित रह गईं । एक स्वर में उन्होंने

कहा, "यह हिंसा नहीं है क्या ?"

महात्माजी खिलखिलाते हुए बोले, "तुम्हारे गाल पर एक तमाचा मारकर तुम्हें समझाना पड़ेगा कि हिंसा किसे कहते हैं ?"

फिर इधर-उधर देखकर बोले, "यहां किसी समाचारपत्र का सम्वाददाता तो नहीं है ?"

लेकिन वहां कोई भी नहीं था। महात्माजी जानते थे कि ये सम्वाददाता लोग बात का बतंगड़ बना देते हैं। अहिंसा वीरों का अस्त्र है, यह कोई समझता ही नहीं। उन्होंने बार-बार कहा है, "अहिंसा के बुर्के द्वारा अपनी कमजोरी और डर को नहीं छिपाया जा सकता।"

: १६ :

मैं महात्मा नहीं हूं

उन दिनों श्री मोहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस में ही थे। उसका वार्षिक अधिवेशन उस वर्ष नागपुर में हो रहा था। श्री जिन्ना किसी प्रस्ताव पर बोलने के लिए उठे, तो उन्होंने 'महात्मा गांधी' को 'मि०गांधी' कहकर संबोधित किया। यह सुनकर प्रतिनिधि और दर्शक सभी चकित रह गये। उन्होंने श्री जिन्ना से प्रार्थना की कि वह गांधीजी को 'महात्मा गांधी' कहकर पुकारें, लेकिन श्री जिन्ना अपनी हठ पर अड़े रहे।

अध्यक्ष श्री विजयराघवाचार्य ने भी श्री जिन्ना को

सलाह दी कि वह जनता की भावनाओं का आदर करें, लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। चारों ओर शोर मचने लगा, जैसे कोई तूफान आ गया हो।

इस समय गांधीजी खड़े हुए और जनता को सम्बोधित करते हुए बोले, "मैं महात्मा नहीं हूं। एक साधारण आदमी हूं। जिन्नासाहब को एक शब्द विशेष का प्रयोग करने के लिए मजबूर करके आप मेरे प्रति कोई आदर नहीं प्रकट कर रहे हैं। किसीपर अपने विचार लादकर हम स्वराज्य नहीं ले सकते।"

जनता उसी क्षण मौन हो गई।

: २० :

गरीब किसानों को चूसकर अंग्रेज कर वसूल करते हैं

जिस समय गांधीजी आगाखां-महल में नजरबन्द थे, उस समय वह नियम से मनुबहन को पढ़ाया करते थे। भूमिति के प्रश्न लिखने के लिए और आकृति बनाने के लिए उसके पास कोई अभ्यास-पुस्तिका नहीं थी। इसलिए एक दिन उसने जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट से कहा, "बापूजी मुझसे मामूली कागजों पर भूमिति के सवाल कराते हैं। उनको इकट्ठा करके रखना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है। इस काम के लिए मुझे एक अभ्यास-पुस्तिका ला दीजिये।"

अभ्यास-पुस्तिका आ गई, लेकिन जैसे ही गांधीजी ने उसे देखा तो पूछा, "यह पुस्तिका कौन लाया है ? इसका मूल्य क्या है ? क्या तूने लाने के लिए कहा था ? या कटेली-साहब ने अपने-आप लाकर दी है ?"

एकदम इतने प्रश्न सुनकर मनु सन्न रह गई। बोली, "लाने के लिए तो मैंने ही कहा था। कितने की है, यह मैं नहीं जानती, क्योंकि दाम मैंने नहीं दिये।"

गांधीजी बोले, "अच्छी बात है, अभी पूछकर आओ, कितने की है ?"

मनु कटेलीसाहब के पास पहुंची। वह बोले, "बापूजी से कहना कि इसकी कीमत डेढ़ रुपये है और इसे मैंने मंगवाकर दिया है।"

मनु ने जाकर ऐसा ही कह दिया। गांधीजी बोले, "उनसे यह तो पूछ कि पैसे किसने दिये थे ? और देख, डा० गिल्डर के कमरे में जो अलमारी है, उसके पीछे कुछ पुराने कलेन्डर पड़े हैं। उन्हें ले आ।"

मनु ने पूछा, "आपको कैसे पता कि अलमारी के पीछे कलेन्डर पड़े हैं ?"

गांधीजी बोले, "जिन दिनों गिल्डर को बुखार आता था, मैं उनके कमरे में गया था, तभी मैंने कलेन्डर देखे थे। उनका पिछला हिस्सा कोरा है। उनपर भूमिति के बढ़िया चित्र खींचे जा सकेंगे।"

तभी आ गये डा० कटेली। गांधीजी ने उनसे कहा, "डेढ़ रुपये की यह अभ्यास-पुस्तिका सरकारी पैसों से खरीदी गई है,

लेकिन सरकार लन्दन से तो पैसे लाती नहीं। मैं इस देश के पैसों का दुरुपयोग कैसे होने दे सकता हूं? इसे आप लौटा दीजिये और डेढ़ रुपया वापस मंगा लीजिये।"

और जब मनुबहन कलेन्डर लेकर आई तो उससे बोले, "तू जानती है न, गरीब किसानों को चूसकर अंग्रेज कर वसूल करते हैं, पर शायद तू यह नहीं जानती कि उन्हीं खून से सने पैसों से वे इस महल का खर्च जुटाते हैं। इसलिए हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम देश की एक पाई का भी गलत उपयोग तो नहीं कर रहे। अगर आज हमने उस अभ्यास-पुस्तिका का उपयोग किया होता तो देश का डेढ़ रुपया गलत ढंग से खर्च हो जाता।"

: २१ :

तब तो अवश्य आऊंगा

सन् १९२६ में कुमारी म्यूरियल लेस्टर साबरमती-आश्रम आई थीं। एक दिन उन्होंने गांधीजी से कहा, "बापूजी, आप इंग्लैण्ड आने की कृपा अवश्य कीजिये।"

गांधीजी बोले, "मैं कैसे आऊं? अभी यहां जो आन्दोलन छेड़ रखा है, उसमें सफलता नहीं मिल पाई है। इसलिए अपने सिद्धान्तों की बात आपके देश-वासियों से कहने कैसे आ सकता हूं?"

कुमारी लेस्टर बोलीं, "मैं यह कब कह रही हूं कि आप

मेरे देश में कोई बात सिखाने के लिए आयें। आप हमसे कुछ सीखने के लिए आइये।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "बहुत ठीक, तब तो अवश्य आऊंगा। वहां जार्ज डेविस जैसे प्रमुख व्यक्तियों से विचार-विनिमय करके मुझे बड़ी खुशी होगी, लेकिन फिर भी मेरी कुछ शर्तें हैं। उनमें पहली शर्त यह है कि आप अपने देश का कपड़ा बनानेवाली मिलों के मालिकों से यह कहने का वादा करें कि अबसे उन मिलों का कपड़ा भारत नहीं भेजा जायगा।"

कुमारी लेस्टर ने उत्तर दिया, "मैं समझी। प्रयत्न करूंगी। और क्या शर्त है आपकी ?"

गांधीजी बोले, "मेरी दूसरी शर्त यह है कि आप अपने देश के शासकों को इस बात के लिए राजी कर लें कि वे भारत को स्वराज्य देदें।"

कुमारी लेस्टर ने कहा, "अच्छी बात है। और कोई शर्त ?"

गांधीजी बोले, "हां, एक शर्त और है। आप जब अपने देश वापस लौटें तो यहां जो कुछ देखा है, उसका वर्णन अवश्य करें। आपके देशवासियों की सोहबत में रहकर यहां मदिरा-पान बढ़ गया है। हम इस देश को उससे मुक्त करने का प्रण कर चुके हैं। हिन्दू और मुसलमान, कोई भी इसका प्रयोग नहीं करना चाहता। लेकिन सरकार इन चीजों से राजस्व कर वसूल करती है और उससे शिक्षा का खर्च चलाती है। हाल ही में जो गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट बना है, उसमें

भी ऐसी ही चाल चली गई है। अपने देशवासियों से कहिए कि हम अफीम को निषिद्ध पदार्थ मानते हैं और उसकी आमदनी से देश की विकास-योजनाओं को चलाने के विरुद्ध हैं। आप इन तीनों कामों को पूरा करेंगी, तो मैं अपने खर्चे से इंग्लैण्ड आऊंगा और लाखों देशवासियों के दस्तखत लाऊंगा, जिससे यह काम पूरा हो सके।"

: २२ :

भविष्य तो वर्तमान की घटनाओं पर ही अवलम्बित है

कलकत्ता में साम्प्रदायिक उपद्रवों का दावानल सुलग रहा था। गांधीजी सोदपुर-आश्रम में ठहरे हुए थे। उनकी वेदना का कोई पार नहीं था। उसी समय बंगाल के मुख्य मंत्री श्री सुहरावर्दी अन्य मंत्रियों के साथ उनसे मिलने के लिए आये। तबतक कुछ-कुछ शान्ति हो चली थी। वह बोले, "अब तो शान्ति स्थापित हो गई है और हमारी सरकार में कोई गैर-इन्साफी नहीं रही है।"

वह इस प्रकार बोल रहे थे, मानो न्याय की प्रतिमा हों। लेकिन व्यवहार उनका वैसा नहीं था। गांधीजो तुरन्त बोले, "आपका दिमाग तो बहुत तेज है। जीभ में तो हड्डी है ही कहां!"

सुहरावर्दीसाहब ने उत्तर दिया, "हम नया निजाम

कायम करना चाहते हैं, जिससे एक कौम दूसरी कौम पर जुल्म न कर सके।"

गांधीजी बोले, "आप भविष्य में ऐसा करना चाहते हैं, पर जानते नहीं कि भविष्य तो वर्तमान की घटनाओं पर ही अवलम्बित है। वर्तमान की हालत कैसी खराब है! कलकत्ता को भविष्य में आदर्श बनाना चाहते हैं, पर उसकी स्थिति आज बिलकुल उल्टी है। उसका क्या हो? इसलिए यदि आप अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हैं तो अभी जहां उपद्रव हो रहे हैं, वहां जायं। कोई आपको काट डाले तो कट जायं, पर अपने भाइयों को समझायें। ऐसा आप एक दिन तो क्या, एक घंटे भी करें तो सचमुच ही कलकत्ता और यहां के मुख्य मंत्री भारत के लिए दीप-स्तम्भ बन जायं।"

: २३ :

जीवन सेवा के लिए ही है

असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में बहुत-से विद्यार्थियों ने सचमुच कालेज छोड़कर आज़ादी के आन्दोलन में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। नागपुर कांग्रेस के अवसर पर ऐसे ही कुछ विद्यार्थी गांधीजी से मिलने आए। उन्हीं में से एक ने पूछा, "आपने विश्वविद्यालय में शिक्षा लेने से हमें मना तो कर दिया है, परन्तु और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की हमारी प्रवृत्ति कम नहीं हुई है। इसके लिए आपने

क्या योजना बनाई है ?"

यह प्रश्न सुनकर गांधीजी के नेत्रों में जैसे चमक उभर आई। बोले, "आप जो कुछ कह रहे हैं, वह ठीक नहीं है। मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि मैं आपकी पढ़ाई बन्द कर दूं। मैंने आप लोगों को विश्वविद्यालय से निकाला नहीं, बल्कि सच्चे विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कराया है। विश्व स्वयं में एक विश्वविद्यालय है। राष्ट्र के लिए कार्य करते समय यदि पढ़ाई बन्द होने का डर मालूम होता है तो वह राष्ट्रीय कार्य नहीं है। राष्ट्रीय कार्य ही स्वयं शिक्षा है। संकुचित, घिरी हुई चहारदीवारी की सीमित शिक्षा को मैं व्यापक शिक्षा की ओर बढ़ा रहा हूं। धन, ऐश्वर्य, सुख, वैभव या बुद्धिमत्ता की अपेक्षा आत्मा को ही महत्व मिले, इसकी सावधानी रखी जाय। शिक्षा के सम्बन्ध में मेरी यही कल्पना है। आप 'महान' की अपेक्षा 'अच्छे' बनें, यही मेरी अभिलाषा है। जीवन सेवा के लिए ही है, यह मूलमंत्र आप लोग अच्छी तरह गांठ बांधकर रख लें, क्योंकि यही शिक्षा का मूल उद्देश्य है।"

यह सब सुनने के बाद कोई कुछ भी पूछने की स्थिति में नहीं रहा, लेकिन एक छोटे-से बालक ने पूछा, "किस समय क्या करना चाहिए, ऐसी समस्या आने पर कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह मुझे नहीं सूझता। कृपाकर आप बता दीजिये।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अरे, इसमें क्या मुश्किल है। जब ऐसी समस्या सामने उपस्थित हो, उस समय जो सर्वाधिक

त्याग का मार्ग हो उसे ही अपनाया कर। वही सबसे सुरक्षित मार्ग है।"

: २४ :

हमें अपना इलाज खुद करना सीख लेना चाहिए

पंडित जवाहरलाल नेहरू मद्रास जाते हुए वर्धा रुके। दो-तीन घंटे के लिए सेगांव भी गये, पर वहां गांधीजी से वह जितना समय बातचीत के लिए चाहते थे उतना समय उन्हें नहीं मिला। बात यह थी कि सेगांव में उस छोटी-सी झोपड़ी के बरामदे में दो मरीजों की खटियां पड़ी थीं। किसी किस्म की पेट की गड़बड़ी से पैदा होनेवाला ज्वर उन्हें था। गांधीजी ने उन्हें अस्पताल नहीं भेजने दिया। इसी बात पर जोर दिया कि उनका खिलाना-पिलाना, नहलाना, गीली चद्दरों में उन्हें लपेटना, कटि-स्नान देना आदि सभी काम वह स्वयं करेंगे। जिस समय पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और सरदार वल्लभभाई पटेल वहां पहुंचे तो गांधीजी इसी परिचर्या में लगे हुए थे। उन लोगों को बहुत देर तक राह देखनी पड़ी। आखिर सरदार पटेल ने अपने खास ढंग से कहा, "तो बापूजी, आपको अगर फुर्सत न हो तो हम लोग फिर चलें।"

गांधीजी मुस्कराए और समझाने लगे कि मरीजों की

परिचर्या करना कितना कठिन काम है। इसपर जवाहर-लालजी ने कहा, "पर बापू, क्या आपका यह काम राजा केन्यूट के समुद्र की तरंगों को रोकने के प्रयास की ही तरह नहीं है? आप तो मानो समुद्र के ज्वार को रोकनेवाले की कोशिश की तरह काम कर रहे हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इसीलिए तो केन्यूट राजा आपको बना दिया है, जिससे आप दूसरों की अपेक्षा इस काम को अधिक अच्छी तरह कर सकें।"

जवाहरलालजी बोले, "पर क्या इससे अच्छा तरीका है ही नहीं? क्या यह सब आपको ही करना चाहिए?"

गांधीजी ने कहा, "तब फिर कौन करे? इस पासवाले गांव में जाकर अगर आप देखें तो आपको पता चलेगा कि उसकी आबादी के छः सौ आदमियों में से बेचारे तीन सौ बुखार में पड़े हुए हैं। क्या उन सबको अस्पताल जाना चाहिए? हमें तो अपना इलाज खुद करना सीख लेना चाहिए। अपने ही पापों का हमें प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। बंगाल की पानी की समस्या पर प्यारेलाल की लिखी लेखमाला में आपने पढ़ा ही होगा कि यह मलेरिया, हैजा और ये बीमारियां हमारी अपनी ही बुलाई हुई हैं। इन गरीब देहातियों को सिखाने के लिए अपना उदाहरण पेश करने के अतिरिक्त और कौनसा तरीका हो सकता है?"

हरिजन भाइयों की हजामत बनाने में कोई परहेज नहीं होगा !

सेगांव-आश्रम में एक दिन गांधीजी सुबह-सुबह एक बाल काटने की मशीन को साफ करने और तेल देने के लिए खोल रहे थे। खोलकर उन्होंने उसे साफ किया, फिर उसी तरह जोड़कर और एक शीशा अपने सामने रखकर स्वयं अपने बाल काटने लगे। अचानक उसी समय साधु बाबा का एक भक्त उधर आ निकला। यह साधु बाबा गांधीजी के पास ही रहते थे और उनका भक्त जाति का नाई था। उसे देखकर साधु ने गांधीजी से कहा, "भीमा को हजामत बनाने दीजिये न ! वह तो अच्छी तरह बाल बनाना जानता है। इसका तो पेशा ही यह है।"

गांधीजी बोले, "अरे, तब तो ठीक है ! आओ, भाई।"

लेकिन जैसे ही भीमा ने मशीन चलानी शुरू की, गांधीजी ने उससे पूछा, "मेरे खयाल में अपने हरिजन भाइयों की हजामत बनाने में तो तुम्हें कोई परहेज नहीं होगा ?"

भीमा कुछ हिचकिचाया, बोला, "दिल में तो कोई परहेज नहीं है।"

गांधीजी ने कहा, "सो तो मैं जानता हूं, पर जैसे तुम मेरी हजामत बनाते हो, उसी तरह तुम हरिजन की भी बना

दोगे ?"

वह फिर कुछ हिचका। अब गांधीजी साधु महाराज से बोले, "मैं तो इस खयाल में था कि नाई को हजामत बनाने को कहने से पहले ही आपने इस बात का पता लगा लिया था।"

साधु बाबा बोले, "मुझे खेद है, यह बात उस वक्त मेरे ध्यान में नहीं आई।"

गांधीजी ने कहा, "तो फिर ज़रा मुझे इस बात पर विचार करना पड़ेगा कि हजामत को बीच में ही रोककर भीमा को छुट्टी दे दूं।"

तभी सहसा भीमा बोल उठा, "नहीं, ऐसा न करें। मैं यों आमतौर पर हरिजनों की हजामत नहीं बनाता, पर अब वादा करता हूं कि आज से उनके साथ कोई भेदभाव नहीं रखूंगा।"

यह सुनकर गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए।

: २६ :

जो काम जिस समय करना है, करना

उन दिनों प्रयाग में कांग्रेस के बहुत-से नेता आये हुए थे। आनन्द भवन अतिथियों से भरा हुआ था। उनकी सुख-सुविधा की देखभाल करने के लिए एक पूरा स्वयंसेवक दल भी गठित हुआ था।

जाड़े के दिन थे। नहाने-धोने के लिए गरम पानी अनिवार्य था। एक बड़े बर्तन में पानी गर्म होता था और स्वयंसेवक छोटी-छोटी बाल्टियों में भरकर अतिथियों के पास पहुंचा दिया करते थे।

आदेश हुआ कि गांधीजी के लिए गर्म पानी ११ बजे पहुंच जाना चाहिए। पानी तो तैयार था ही, लेकिन दुर्भाग्यवश ११ बजे कोई अच्छी बाल्टी मौजूद नहीं थी। एक ही बाल्टी थी और उसका हत्था टूटा हुआ था। उसे कैसे ले जाया जा सकता था? इसलिए स्वयंसेवक राह देख रहे थे कि कोई अच्छी बाल्टी आ जाय। ११ बजे नहाने का कोई मुहूर्त थोड़ा ही है। दो-चार मिनट इधर-उधर हो जाने से क्या हो जायगा!

उधर गांधीजी ठीक ११ बजे नहाने के लिए आ पहुंचे, लेकिन पानी नहीं था। उन्होंने स्वयंसेवकों की ओर देखा, बाल्टी की ओर देखा और मुस्करा दिये, मानो कहा हो, आप लोगों की समस्या मैं समझ गया।

दूसरे क्षण वह तेजी से हमाम की ओर आये। बिना हत्थे की बाल्टी को दोनों हाथों से उठा लिया और तीर की तरह अपने नहाने के स्थान की ओर चले गये। जाते समय वह कह गये, "जो काम जिस समय करना है करना। न करना समय के साथ दगाबाजी है।"

यह सब आननफानन में हो गया। स्वयंसेवक देखते ही रह गये। संध्या को उन्होंने देखा, गांधीजी के अंगूठों और तर्जनी पर दवा लगी हुई है। उनका हाथ जल गया था,

लेकिन समय के साथ उन्होंने जो वादा किया था, उसको उन्होंने पूरा किया।

: २७ :

इसी धूप में हमारे देश के करोड़ों नर-नारी खेतों में काम करते हैं

गांधीजी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अनेक वर्षों तक सदस्य रहे थे। उनकी सुविधा के लिए समिति की बैठकें सेवाग्राम अथवा वर्धा में हुआ करती थीं। सम्भवतः यह १९४०-४१ की घटना है। उन्हीं दिनों समिति की एक बैठक होनी थी, लेकिन अभी यह निश्चय नहीं हुआ था कि वह वर्धा में हो या सेवाग्राम में।

वर्धा पहुंचने के बाद श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की आज्ञा से श्री उदयनारायण तिवारी ने श्री महादेव देसाई को फोन किया कि समिति की बैठक कहां रखी जाय? महादेवभाई ने उत्तर दिया, "युद्ध के कारण पेट्रोल मिलने में कुछ कठिनाई हो रही है, इसलिए अभीतक यह निश्चित नहीं हो सका है कि बापूजी स्वयं वर्धा आयंगे या आप लोगों को सेवाग्राम आना होगा। किन्तु यह निश्चित है कि यदि आप लोगों को सेवाग्राम आना है तो ठीक ढाई बजे आपको अतिथि भवन के सामने मोटर खड़ी हुई मिलेगी।"

ढाई बज गये, लेकिन कार नहीं आई। वे लोग घबरा

उठे । मन में तर्क-वितर्क उठने लगे । कार नहीं आई है, तो क्या बापूजी स्वयं इस कड़ी धूप में सेवाग्राम से वर्धा आयंगे ? आश्विन की इस धूप में मोटर में बाहर निकलना भी कठिन मालूम होता है । तब बापूजी पैदल कैसे चलेंगे ? उन्हें नहीं चलना चाहिए ।...

सब लोग यह सोच-सोचकर चिन्तित हो रहे थे । तीन बजने में केवल दस मिनिट शेष थे । सबकी दृष्टि सेवाग्राम के पथ पर गड़ी हुई थी कि तभी उन्होंने क्या देखा, गांधीजी द्रुत गति से अतिथि-भवन की ओर आ रहे हैं । उनके सिर पर किसानों जैसा पग्गड़ है और शरीर पर पानी में निचोड़ी हुई चादर । हाथ में एक लम्बी लाठी और कन्धे पर झोला । झोले में चर्खा और सूत ।

सबने उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने अपने पैर धोये और कमरे में आ गये । उन्होंने कंधे से झोला उतारा और कातना शुरू कर दिया । श्री उदयनारायण तिवारी से नहीं रहा गया । गांधीजी के पास जाकर बोले, "बापूजी, आश्विन की इस कड़ी धूप में आप चार-पांच मील पैदल कैसे आये ? आप तो सेवाग्राम से लगभग १ बजे ही चल पड़े होंगे ?"

गांधीजी बड़े जोर से हँसे और बोले, "तुम इस बात को क्यों भूल जाते हो कि इसी धूप में हमारे देश के करोड़ों नर-नारी खेतों में काम करते हैं !"

विद्यार्थी जीवन में सादगी से रहना चाहिए

उन दिनों गांधीजी की पौत्री सुमित्रा होस्टल में रहकर पढ़ती थी। एक बार छुट्टियां बिताने के लिए वह गांधीजी के पास आई। उस समय वह पटना में थे। दूसरे बहुत-से विद्यार्थियों की तरह सुमित्रा ने भी करीब-करीब अपनी सभी चीजें खो दी थीं, इसलिए उसके नाप के ढंग के कपड़े बनवाये गए। उसके पास चप्पलें भी नहीं थीं। उसने गांधीजी से कहा, "मैं बाजार जाकर चप्पलें ले आती हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "चप्पलें क्यों चाहिए? कालेज विद्या का भवन है। ऐसे पवित्र स्थान पर चमड़े की चप्पलें ले जाना उचित नहीं है। तुम्हें लकड़ी की खड़ाऊं पहनकर कालेज जाना चाहिए।"

सुमित्रा इस बात के लिए तैयार नहीं थी। उसने बार-बार चप्पलें खरीदने का आग्रह किया। बिहार के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री कृष्णबाबू ने भी कहा, "मैं सुमित्रा को चप्पलें दिलवा देता हूं।"

लेकिन गांधीजी सहमत नहीं हुए। उन्होंने उस दिन सुमित्रा को चप्पल खरीदने के लिए बाजार नहीं जाने दिया। कहा, "बच्चों को विद्यार्थी-जीवन में सादगी से रहना चाहिए।"

वह साफ क्यों नहीं किया ?

स्वच्छता के प्रति गांधीजी के आग्रह की कोई सीमा नहीं थी। गेहूं आदि वह अपने-आप साफ करते थे। उसी प्रकार मल पर मिट्टी डालकर उसे गाड़ देने की व्यवस्था आश्रम में थी। यह काम भी वह उसी सहज भाव से करते थे। दिन-प्रतिदिन के जीवन में हर कहीं उनका ध्यान सफाई पर रहता था। देश और विश्व की जटिल समस्याओं में लगे रहने पर भी वह इस क्षेत्र में कभी नहीं चूके।

एक दिन वह भोजन करने के लिए बैठे थे। प्रभुदास और देवदास दोनों बर्तन आदि साफ करके खेलने की तैयारी में थे कि सहसा गांधीजी ने देवदास को पुकारा, "देवा, इधर आ।"

देवदास और प्रभुदास दोनों उनके पास पहुंचे। गांधीजी ने पूछा, "सब काम खत्म कर लिया ?"

देवदास ने उत्तर दिया, "जीहां।"

गांधीजी बोले, "क्या तुमने देखा कि जहां तुमने बर्तन साफ किये थे, वहां एक कढ़ाई थी। उसके पास किसीने खाते समय दाल और चावल डाल दिये थे। उन्हें तुमने क्यों नहीं साफ किया ?"

देवदास ने उत्तर दिया, "वे हमने नहीं डाले थे।"

गांधीजी ने तुरन्त कहा, "तुमने नहीं डाले, तो क्या हुआ ? जब सफाई करना तुम्हारा काम है, तो तुम्हें देखना चाहिए था कि दाल और चावल वहां क्यों पड़े रह गये हैं ?"

कहना नहीं होगा कि खेलना छोड़कर देवदास को पहले वह काम करना पड़ा ।

: ३० :

मोटर यातायात का अप्राकृतिक साधन है

जून, १९२९ में गांधीजी उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा जिले का दौरा कर रहे थे। १८ तारीख को एक विराट सभा में भाषण देने के बाद जब वह अपने निवास-स्थान की ओर लौट रहे थे, तब पदमसिंह नाम का एक ग्रामीण उनके दर्शन करने के लिए मोटर की ओर झपटा और दुर्घटना का शिकार हो गया। मोटर उसके ऊपर से होकर निकल गई।

जैसाकि हो सकता था, उसे तुरन्त अस्पताल ले जाया गया, लेकिन दो दिन जिन्दा रहने के बाद अचानक हृदय की गति रुक जाने से उसकी मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना की चर्चा करते हुए गांधीजी ने लिखा है, "मौत या उससे छोटी दुर्घटनाओं से मुझे क्षणिक आघात के सिवा कुछ नहीं होता परन्तु यह लिखते समय तक भी मैं इस आघात के प्रभाव से

मुक्त नहीं हुआ हूं। इसका कारण यह है कि मुझे पदमसिंह की मृत्यु के अपराध में भागीदार होने का भान है। जिस भीड़ में से गुजरने के लिए मोटर जद्दोजहद कर रही थी, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ड्राइवर मोटर बहुत तेज़ी से चला रहा था। मुझे या तो पैदल चलने का आग्रह करना चाहिए था या मोटर को उस समय तक पैदल की चाल पर चलाने का आग्रह रखना था, जबतक हम भीड़ से बाहर न निकल जाते; परन्तु हमेशा मोटर की सवारी करने से मेरी भावनाओं में स्थूलता आ गई मालूम होती है और गम्भीर दुर्घटनाओं से बचे रहने से पैदल चलनेवालों की सुरक्षा के प्रति एक अज्ञात किन्तु अक्षम्य उदासीनता पैदा हो गई है। आघात का कारण शायद इस अपराध का यह भान ही है। उसकी मृत्यु मेरे लिए एक सबक है। यद्यपि मेरी असंगता के लिए मेरी हँसी उड़ाई जा सकती है, परन्तु मैं अपना यह विश्वास अवश्य दोहराऊंगा कि मोटर की सवारी में कितनी ही सुविधाएं हों तो भी वह यातायात का अप्राकृतिक साधन ही है। इसलिए हमें अपने ड्राइवरों पर काबू रखना चाहिए और यह समझना चाहिए कि गति ही जीवन में सबकुछ नहीं और अन्त में शायद इससे कोई लाभ भी सिद्ध न हो। मुझे अभी यह स्पष्ट प्रतीति नहीं हुई कि मेरा पागलों की तरह भारत-भर में भागते फिरना सर्वथा कल्याणकारी ही सिद्ध हुआ है।"

किसका दान बड़ा है ?

चन्दा मांगने में गांधीजी की तुलना किसीके साथ नहीं की जा सकती, मानो वह अपने हृदय से ही पुकारते थे। जनता से उन्हें वैसा ही सहयोग भी मिलता था, विशेषकर स्त्रियों से। गांधीजी हर्ष से भर उठते थे।

एक बार तनी नामक स्थान पर स्त्रियों की एक सभा हुई थी। सदा की तरह वहां भी गांधीजी ने चन्दे की मांग की थी। उस समय लगभग ७५ वर्ष की एक गरीब वृद्धा ने, जिसकी कमर आयु के बोझ से झुक गई थी, परन्तु जिसके नेत्रों में सत्य की ज्योति जगमगा रही थी, गांधीजी के हाथों में चार आने रख दिये। उस समय वह महिला सचमुच बहुत प्रसन्न थी।

उसके तुरन्त बाद आईं एक अधेड़ वय की खादीधारी महिला। उन्होंने गांधीजी के हाथों में पांच रुपये रखे। एका-एक गांधीजी ने पूछा, "किसका दान बड़ा है ? तुम्हारा या इस बूढ़ी बहन का ?"

उन बहन ने दृढ़ स्वर में तुरन्त उत्तर दिया, "दोनों बरा-बर हैं।"

इस घटना का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने लिखा है, "ऐसे बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर के लिए मैं तैयार नहीं था। उस बहन से मात खाने में मुझे अपार हर्ष हुआ।"

मैं जीवन भर अन्धविश्वासों से लड़ता रहा हूं

तिरुवेन्नेनलूर के भिक्कू निर्मलानन्द की बड़ी इच्छा थी कि वह एक कृष्ण मन्दिर गांधीजी के नाम पर समर्पित करें, लेकिन इसके लिए वह गांधीजी की सहमति आवश्यक मानते थे। इसलिए मई, १६४१ में यह प्रस्ताव उन्होंने उनके सामने रखा। सुनकर गांधीजी पहले तो खिलखिलाकर हँसे, फिर गम्भीर स्वर में बोले, "हां, सुझाव अच्छा है। आपका ऐसा करने का हेतु भी शुभ है, लेकिन आप जानते हैं मैं जीवनभर सब प्रकार के अन्धविश्वास से लड़ता रहा हूं। उन्होंने हमारे समाज और धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। आप अपने आश्रम में ऐसा मन्दिर बनायंगे तो उसके चारों ओर अन्धविश्वास ही पनपेंगे। भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मों में एकता तो उत्पन्न होगी ही नहीं, एक नई गांधी-जाति पैदा हो जायगी। मैं नहीं चाहता कि ऐसा हो। मैं आपको एक सुझाव दे सकता हूं। आप अपने आश्रम में प्रार्थना के लिए एक स्थान अलग निश्चित कर दें। उसके चारों ओर अच्छे-अच्छे फूलों के वृक्ष लगा दें। जाति, धर्म और मनुष्य का विचार किये बिना सबको वहां जाकर प्रार्थना करने की सुविधा हो। प्रार्थना-भूमि पर जब सब लोग इकट्ठे होंगे और जब वृक्षों से फूलों

की वर्षा होगी तो उनसे मन प्रफुल्लित कर देनेवाली सुगन्ध उठेगी और भक्ति के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न होगा।"

भिक्कू निर्मलानन्द ने गांधीजी का यह सुझाव तुरन्त स्वीकार कर लिया और एक प्रार्थना-भूमि का निर्माण करके उसके चारों ओर फूलों के पेड़ लगा दिये।

: ३३ :

मैं काम का ढोंग नहीं करूंगा

दक्षिण अफ्रीका की जेलों में अधिकतर भारतीय कैदी गिट्टी फोड़ने का काम किया करते थे। गांधीजी जब वहां गये तो उन्होंने भी यही काम करने की मांग की। दरोगा ने उत्तर दिया, "बड़े दरोगा का हुक्म है कि आपको बाहर न निकाला जाय, इसलिए आपको गिट्टी फोड़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

और उन्हें अनुमति नहीं दी गई। वह अन्दर रहकर ही काम करते रहे। प्रायः मशीन पर सीने का काम वह करते थे, लेकिन एक दिन उनके पास काफी काम नहीं था। जो कुछ था, उसे समाप्त करके वह पुस्तकें पढ़ने लगे। लेकिन जेल में तो प्रत्येक कैदी को कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए। उन्हें पढ़ते देखकर दरोगा ने पूछा, 'क्या आज तुम बीमार हो?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "जी, नहीं।"

दरोगा ने कहा, "तो तुम कोई काम क्यों नहीं करते ?"

गांधीजी बोले, "मेरे पास जो काम था, वह मैं पूरा कर चुका। मैं काम का ढोंग नहीं करूंगा। मुझे काम दें तो मैं करने को तैयार हूं, अन्यथा खाली समय में बैठा-बैठा पढ़ता रहूं, तो आपको क्या आपत्ति है ?"

दरोगा ने कहा, यह तो ठीक है, लेकिन जिस समय यहां बड़े दरोगा या गवर्नर आयें उस समय तुम स्टोर में रहो तो अच्छा है।"

गांधीजी बोले, "मैं ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हूं। मैं गवर्नर से कहूंगा कि मेरे पास काफी काम नहीं है। इस-लिए मुझे गिट्टी फोड़ने के लिए भेजा जाय।"

लेकिन उन्हें फिर भी गिट्टी फोड़ने के लिए जाने की अनुमति नहीं मिली, क्योंकि वह दूसरे दिन ही वोक्सरस्ट वापस जानेवाले थे।

: ३४:

जबतक सब भारतीयों को घी नहीं मिलता तबतक. . .

दक्षिण अफ्रीका की जेलों में जो खाना मिलता था, वह भारतीयों के लिए किसी भी तरह उपयुक्त नहीं था। इसलिए गांधीजी को वहां बार-बार संघर्ष ककरना पड़ा। ए बार घी को लेकर काफी दिन तक संघर्ष चला।

शाम के समय चावल घी नहीं मिलता था। गांधीजी ने दरोगा से इस बात की शिकायत की। उसने उत्तर दिया, "घी तो केवल बुधवार और रविवार को गोश्त के बदले में मिलेगा। यदि तुम ज्यादा बार लेना चाहते हो, तो डाक्टर से मिलो।"

गांधीजी डाक्टर से मिले। वहांपर बड़ा दरोगा भी उपस्थित था। उसने कहा, "गांधी की मांग उचित नहीं है। आजतक लगभग सभी भारतीय कैदियों ने चर्बी खाई है, गोश्त भी खाया है। जो लोग चर्बी नहीं लेते, उन्हें अब सूखा चावल मिलता है और वे सब खुशी से खाते हैं। जब वे जेल में आये, उस समय उनका वजन लिया गया था। जब गये तब भी लिया गया था। उन सबका वजन उस समय बढ़ा हुआ पाया गया।"

डाक्टर ने गांधीजी की ओर देखा और कहा, "अब आपका क्या कहना है?"

गांधीजी बोले, "यह बात मेरे गले नहीं उतरती। अपने विषय में मैं कह सकता हूं कि यदि मुझे घी के बिना रहना पड़ा तो मेरी तबीयत बिगड़ जायगी।"

डाक्टर बोला, "तो तुम्हारे लिए मैं डबलरोटी का हुक्म किये देता हूं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं आपका कृतज्ञ हूं, लेकिन यह अर्जी मैंने विशेष रूप से अपने लिए नहीं की है। जबतक सब लोगों के लिए घी का हुक्म नहीं मिलता तबतक मैं डबलरोटी नहीं ले सकता।"

और सचमुच उन्होंने नहीं ली। दूसरे दिन उन्होंने डायरेक्टर को अर्जी भेजी और दूसरी जेलों का उदाहरण देते हुए सब कैदियों के लिए घी की मांग की। पन्द्रह दिन बाद उत्तर आया कि जबतक भारतीय कैदियों के लिए दूसरे प्रकार की खुराकका निर्णय न हो तबतक गांधीजी को प्रतिदिन घी के साथ चावल दिये जायं।

गांधीजी को यह पता नहीं था कि यह आदेश केवल उन्हींके लिए हुआ है। उन्होंने प्रसन्न होकर चावल, घी और डबलरोटी खाई। लेकिन दूसरे दिन जब उन्हें वास्तविकता का पता लगा तो उन्होंने यह भोजन लेने से इंकार कर दिया। बड़े दरोगा से उन्होंने कहा, "जबतक सब भारतीयों को मेरी तरह घी नहीं मिलता तबतक मैं भी नहीं ले सकता।"

डिप्टी गवर्नर ने, जो उस समय वहां उपस्थित था, उत्तर दिया, "यह तुम्हारी मर्जी की बात है।"

गांधीजी ने फिर डायरेक्टर को लिखा और वह केवल अपने लिए घी नहीं ले सकते, इसका कारण भी स्पष्ट कर कर दिया। डेढ़ महीने यह संघर्ष चलता रहा। अन्त में यह आदेश हुआ कि जहां-जहां भारतीय कैदी अधिक संख्या में होंगे, वहां-वहां उन्हें घी दिया जायगा। उसी दिन गांधीजी ने सचमुच अपना उपवास तोड़ा।

एक बार जो निर्णय कर लिया, उसे छोड़ना नहीं चाहिए

आगाखां महल में मनु भी गांधीजी के साथ थी। उन दिनों सुशीलाबहन उसे इंगलैंड का इतिहास और भूगोल पढ़ाती थीं। ३ सितम्बर, १९४३ की बात है। मनु किसी दूसरे काम में व्यस्त थी। पढ़ने का समय ६ बजे का था। जब उसने घड़ी देखी तो ६ बजकर १० मिनट हो चुके थे। सोचा, अब दस मिनट में क्या पढ़ा जा सकता है। वह सुशीलाबहन के पास नहीं गई। कोई दूसरा काम करने लगी। साढ़े छः बजे गांधीजी के साथ घूमने जाना था।

घूमते समय एकाएक गांधीजी ने कहा, "एक बार जब अपने मन में निर्णय कर लिया हो, तो उसे छोड़ना नहीं चाहिए। तभी हम जीवन में प्रगति कर सकते हैं। किसी दिन काम पूरा न हो या अपवादस्वरूप नियम तोड़ना पड़े तो मुझसे कह दिया कर। इससे तू नियम पालना सीख जायगी और इसी तरह वक्त की पाबन्दी भी सीख सकेगी। मेरे पास शिकायत आई है कि खाने के लिए भी तू ठीक साढ़े पांच बजे नहीं जाती और पांच-सात मिनट में ही खा लेती है। पांच-सात मिनट में भला क्या खाती होगी! कहना होगा कि तू बिना चबाये जैसे-तैसे

मलेरिया छोड़ता क्यों नहीं ? आज पता चला कि तू बिना चबाये जैसे-तैसे खा लेती है। इसीलिए बीमार पड़ती है। खाने में ठीक आधा घंटा लगाना ही चाहिए। ईश्वर ने तुझे दांत सदुपयोग के लिए दिये हैं। दांतों से अच्छी तरह चबाया जाय, जिससे तन्दुरुस्ती अच्छी रहे। तंदुरुस्ती अच्छी रहेगी तभी तो सेवा हो सकेगी। इसलिए हमें हरेक बात भावना से करनी चाहिए कि सबकुछ ईश्वर के काम के लिए करना है।"

: ३६ :

धर्म-प्रचार का शुद्ध और उदात्त मार्ग आचरण है

घटना ३ नवम्बर, १९२४ की है। गांधीजी कलकत्ता जा रहे थे। अचानक एक अमरीकी यात्री दो बहनों के साथ घूमता हुआ उनके पास आ पहुंचा। वह वास्तुकार था। देश-विदेश से घूमकर आया था। गांधीजी से भी कुछ बातें करना चाहता था। उसके प्रश्न बहुत संक्षिप्त थे। उसने पूछा, "आप इस बारे में कोई राय नहीं देंगे कि हमारे मिशन अपना काम किस प्रकार करें ?"

गांधीजी बोले, "बोलकर नहीं, परन्तु करके। व्याख्यान देकर नहीं, परन्तु आचरण द्वारा वे काम करें।"

अमरीकी बन्धु बोले, "अर्थात् अस्पताल, पाठशालाएं और कालेज आदि खोलकर, यही न ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं यह नहीं कहता, क्योंकि इन संस्थाओं में हमेशा ईसा का जीवन दिखाई देता हो, ऐसी बात नहीं है। ईसा का जीवन तो प्रत्येक ईसाई के प्रत्यक्ष आचरण में दिखाई देना चाहिए। यह आचरण ही दूसरे पर असर करेगा। इसलिए धर्म-प्रचार का शुद्ध और उदात्त मार्ग आचरण ही है।"

अमरीकी बन्धु बोले, "हम अमरीकी लोग आपकी सहायता करें या न करें ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "सहायता अवश्य करें, लेकिन उसका मार्ग यही है कि आप हमारे आन्दोलन का अच्छे ढंग से अध्ययन करें। आज तो यहां की बातों का अमरीका में कई गुना अच्छा या बुरा चित्रण किया जाता है। निर्मल दृष्टि-बिन्दु नहीं रखा जाता। आपको हर चीज का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके न तो आवश्यकता से अधिक प्रशंसा करनी चाहिए, न आवश्यकता से अधिक निन्दा।"

अमरीकी बन्धु ने फिर पूछा, "क्या हम भारतीय विद्यार्थियों की मदद कर सकते हैं ? क्या पैसे से सहायता करें ?"

गांधीजी तुरन्त बोले, "नहीं-नहीं। मैं नहीं चाहता कि मेरा देश किसी भी देश से पैसे की भीख मांगे। मैं तो सहायता को सलाह-समभाव—योग्य मार्ग-दर्शन के—अर्थ में इस्तेमाल करता हूं। हमारे विद्यार्थी आपके देश में आफत में फंस जायं या उलटे रास्ते चलने लगें तो आपका मंडल उन्हें योग्य संस्थाएं बताकर, उनके लिए स्वच्छ स्थान तलाश करके उन्हें सन्मार्ग पर अग्रसर कर सकता है।"

चर्खा और स्वराज्य दीर्घजीवी हों

सन् १९२४ में होनेवाले राष्ट्रीय महासभा के बेलगांव-अधिवेशन के अध्यक्ष स्वयं गांधीजी थे। इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव आया था, जिसके अनुसार सूत देनेवालों को ही मताधिकार देने की व्यवस्था थी।

नेताओं और प्रतिनिधियों में इस प्रस्ताव को लेकर बड़ा मतभेद था। जिस समय इस प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी, गांधीजी ने केवल विरोधियों को ही अधिक-से-अधिक समय दिया। पक्ष में बोलनेवालों के लिए समय नहीं था। कठोर-से-कठोर वचन से उनके रोंगटे खड़े नहीं हुए, कड़ी आलोचना से उनको आनन्द हो आया। अन्त में जब प्रस्ताव पर मत लिये गए तो पक्ष में ११६ और विरोध में केवल १९ मत आये। ऐसा प्रबल बहुमत देखकर गांधीजी के मुंह से सहसा निकल पड़ा, "चर्खा और स्वराज्य दीर्घजीवी हों।"

बहुत से व्यक्तियों को ऐसा लगा कि गांधीजी इस प्रकार एकाएक आवेश में कैसे आ गये। इसका कारण उनका चर्खे के प्रति असाधारण प्रेम ही था। जिसका हृदय लाखों नंगों-भूखों के दुख से रोता हुआ, चर्खे पर ही आस लगाये बैठा हो और उस चर्खे को स्वीकार करनेवाले इतने शिक्षित व्यक्ति मिल जायं तो उसके आनन्द का पार न रहने में आश्चर्य की

क्या बात है ! इस आनन्द-ध्वनि से भी गांधीजी ने सच्चे सत्याग्रही का जो लक्षण है, उसे ही प्रकट किया, अर्थात् अपनी अल्प-से-अल्प मर्यादा बता दी और अल्प से सन्तुष्ट होने की वृत्ति प्रकट की ।

। ३८ ।

आप-मत न दीजिये, सूत दे दीजिये

बेलगांव-अधिवेशन में जिस समय सूत देनेवालों को ही मताधिकार देने के प्रश्न पर बहस हो रही थी, उस समय स्वामी गोविन्दानन्द उसका विरोध करने के लिए खड़े हुए । अधिकतर बोलनेवालों में विरोधी ही थे। स्वामीजी तो बहुत ही चिढ़कर बोल रहे थे। बोलते-बोलते उन्होंने आवेश में आकर कहा, "मैं इस प्रस्ताव के विरुद्ध हूं, लेकिन फिर भी कातूंगा ।"

गांधीजी ने पूछा, "कातकर किसे देंगे ?"

स्वामीजी बोले, "दान करूंगा ।"

गांधीजी बोले, "मुझे ही करेंगे न ?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "हां, आपको ही करूंगा ।"

यह सुनकर सभा में बड़े जोर का ठहाका लगा और उसी ठहाके के बीच गांधीजी बोल उठे, "बस, तब, तो यह समझौता मुझे मंजूर है। आप मत न दीजिये, सूत दे दीजिये ।"

कुछ फिकर नहीं

सन् १६१५ में 'कैसरे हिन्द' का पदक लेने के लिए गांधीजी पूना गये, लेकिन अत्यन्त आवश्यक कार्य से उन्हें कहीं जाना था, इसलिए वह दरबार में अधिक देर नहीं ठहरे। वहां से सीधे स्टेशन चले गये। सर प्रभाशंकर पट्टणी उनके साथ थे। स्टेशन पर पहुंचकर क्या देखते हैं कि गाड़ी सिपाहियों से खचाखच भरी हुई है।

गांधीजी एक डिब्बे में चढ़ने लगे तो सिपाही संगीन लेकर सामने आ गया। गांधीजी बोले, "कुछ फिकर नहीं।"

और वह भीतर घुसकर एक सिपाही के पैरों के पास बैठ गये। पट्टणीसाहब ने कहा, "कहां बैठे हैं ?"

गांधीजी बोले, "कुछ फिकर नहीं।"

गाड़ी चलने का समय हो गया। पट्टणी साहब फिर बोले, "अब तो तृप्त हो गये। आइये, किसी और डिब्बे में चलें।"

गांधीजी बोले, "कुछ फिकर नहीं।"

और वह वहीं बैठे रहे। गाड़ी चल पड़ी। विवश और बेबस पट्टणीसाहब वापस लौट आये।

भगवान ने अहिंसा के अस्त्र के रूप में मुझे एक अमूल्य भेंट दी है

द्वितीय विश्व-युद्ध में ब्रिटिश सरकार ने भारत से बिना पूछे ही उसे एक युद्ध-रत देश घोषित कर दिया। भारत युद्ध में सहायता तो करना चाहता था, परन्तु आत्मसम्मान के साथ। वह स्वतंत्रता चाहता था, लेकिन ब्रिटेन उसे आजाद करना नहीं चाहता था। ऐसे समय भारत एक मूक दर्शक के रूप में कैसे रह सकता था ? जब हमलावर उसके द्वार पर आ पहुंचा हो तो क्या वह नपुंसकों की तरह देखता रहे ? इसी निराशा में से 'भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द हुआ। गांधीजी ने अहिंसक प्रतिरोध की घोषणा की। बहुत-से लोगों को ऐसे समय यह घोषणा करना पागलपन मालूम दिया, लेकिन गांधीजी ने कहा, "यदि विश्व के तमाम राष्ट्र मेरा विरोध करते हैं, यदि सारा भारत मुझे कहता है कि मैं गलती पर हूं तो भी मैं पीछे नहीं हटूंगा। केवल भारत की दृष्टि से ही नहीं, लेकिन विश्व की दृष्टि से भी।"

उनकी ऐसी दृढ़ता देखकर विरोधी शांत हो गये और उनके सभी पुराने साथी स्वतंत्रता के अंतिम युद्ध के लिए तैयार हो गये। ब्रिटिश सरकार को भारत के दुश्मन के हाथों पड़ जाने का इतना डर नहीं था, जितना उसे स्वाधीन करने

का था । गांधीजी नहीं चाहते थे कि लोग भेरी कटुता और निराशा के मारे जापानी आक्रमणकारियों का स्वागत करके अपनेको कलंकित करें । उनके लिए यह नैतिक प्रश्न था । श्रद्धा का कार्य था ।

उस समय जो शंकालु थे उनसे गांधीजी ने कहा, "मैं जानता हूं कि देश आज विशुद्ध अहिंसक प्रकार का सविनय आज्ञा भंग करने के लिए तैयार नहीं है, किन्तु जो सेनापति आक्रमण करने से इसलिए पीछे हटे कि उसके सिपाही तैयार नहीं हैं, वह अपने हाथों धिक्कार का पात्र बनता है। भगवान ने अहिंसा के अस्त्र के रूप में मुझे एक अमूल्य भेंट दी है। यदि वर्तमान संकट में मैं उसका उपयोग करने में हिचकिचाऊं तो ईश्वर मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा ।"

: ४१ :

मैं सदा अंग्रेजों का मित्र रहा हूं

लार्ड वेवेल ने गांधीजी को जेल में कार्य समिति के सदस्यों से मिलने की अनुमति देने से इंकार करते हुए जो पत्र लिखा था, उसका अन्तिम भाग इस प्रकार था :

"आपका स्वास्थ्य सुधर जाने के बाद और अधिक विचार करने पर आप भारत के कल्याण के लिए कोई निश्चित और रचनात्मक नीति प्रस्तुत करेंगे तो मैं उसपर खुशी से विचार करूंगा ।"

परन्तु गांधीजी के स्वास्थ्य-सुधार में बीच में ही विघ्न

आ गया। डाक्टरों को भरोसा नहीं था कि ज्यादा ताकत आने से पहले वह 'हूकवर्म' नाम के आंत के कीड़े दूर करने का पूरा उपचार सहन कर सकेंगे। इसलिए जुहू में एक महीना रहने के बाद वे गांधीजी को पूना के पास पंचगनी ले गये।

यहां अनेक पत्रकार उनसे मिलने आये। उनमें एक थे 'न्यूज क्रानिकल' लन्दन के श्री स्टुअर्ट गेल्डर। 'न्यूज क्रानिकल' के अध्यक्ष लार्ड लेटन भारत की राजनैतिक गुत्थी को सुलझाने में मदद करने के लिए उत्सुक थे। इसी उद्देश्य से श्री गेल्डर ने गांधीजी से मिलना चाहा था। गांधीजी ने इस शर्त पर मिलना स्वीकार किया कि वह जो कुछ उनसे कहेंगे, वह मुख्यतः वायसराय के ध्यान में लाने के लिए होगा, तुरन्त पत्र में प्रकाशित करने के लिए नहीं।

भेंट होने पर श्री गेल्डर ने पूछा, "लार्ड वेवल से आप मिलें तो अपनी बातचीत कैसे आरम्भ करेंगे?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं वायसराय से कहूंगा कि मैंने मित्रराष्ट्रों के काम में सहायता देने के लिए ही कार्य समिति से मिलना चाहा था। मुझे लगता है कि कांग्रेस के नाम से काम करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। सत्याग्रह के नियमों के अनुसार जब सविनय आज्ञा भंग करनेवाला व्यक्ति जेल चला जाता है तो उसे दिया हुआ अधिकार अपने-आप समाप्त हो जाता है। उसके जेलमुक्त हो जाने से वह अधिकार उसे फिर से नहीं मिल जाता। इसीलिए मेरा कार्यसमिति के सदस्यों से मिलना जरूरी है।"

श्री गेल्डर ने कहा, "भारत की जनता पर आपका जो प्रभाव

हैं, उसके कारण वायसराय और दूसरे सभी लोग आपके विचार जानने को उत्सुक हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं लोकतंत्रवादी हूं। जनता पर मेरा जो प्रभाव है, मैं उसका दुरुपयोग नहीं कर सकता। इस संगठन को बनाने में मेरा हाथ रहा है। इसके द्वारा ही मैं उस प्रभाव का उपयोग कर सकता हूं।"

परन्तु श्री गेल्डर को डर था कि कहीं वायसराय यह न समझें कि गांधीजी अब भी 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव और 'सविनय आज्ञा भंग' पर अटल हैं। इसलिए कार्यसमिति के सदस्यों से उनके मिलने का यही परिणाम हो सकता है कि वह इन्हें कांग्रेस के नाम से सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन चलाने का अधिकार दे। यह सोचकर श्री गेल्डर ने कहा, "आज्ञा देने का परिणाम यह होगा कि आप जब कार्य-समिति से मुलाकात करके निकलेंगे तो वायसराय के सिर पर पिस्तौल तानकर कहेंगे कि 'ऐसा करो, नहीं तो मैं सविनय आज्ञा भंग आंदोलन आरम्भ करता हूं।' इससे तो स्थिति पहले से भी अधिक बुरी हो जायगी।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इस ढंग से विचार करने की तह में मेरे इस दावे के विषय में पूरा अविश्वास मालूम होता है कि मैं सदा अंग्रेजों का मित्र रहा हूं और आज भी हूं। इसलिए जबतक कोई गम्भीर कारण न हो, जैसे भारत के स्वतंत्रता के स्वाभाविक अधिकार के रास्ते में रुकावट डालना, तबतक मैं युद्ध-काल में सविनय आज्ञा भंग के अस्त्र का कभी भी उपयोग नहीं कर सकता।"

बाहर के व्यक्ति से सफल पथ-प्रदर्शन नहीं मिल सकता

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान औंध के राजकुमार अप्पासाहब पन्त गुप्त कार्यकर्ताओं को सलाह और मार्गदर्शन दे रहे थे। उन्होंने अपनी दुविधा गांधीजी के सामने रखी। बोले, "मेरे लिए सत्य और अहिंसा नीति नहीं, बल्कि धर्म है। मैं ऐसे गुप्त कार्यकर्ताओं को जानता हूं, जो मक्खी को भी जान-बूझकर चोट पहुंचाना नहीं चाहते। उनके रोम-रोम में देश-प्रेम समाया हुआ है। जब वे मेरे पास आते हैं और मेरी सलाह मांगते हैं तो उन्हें मुझे आश्रय देना ही पड़ता है। मैं उन्हें गुप्त उपायों से विमुक्त करना चाहता हूं। लेकिन ऐसा करते हुए मुझे स्वयं ही गुप्तता का आश्रय लेना पड़ता है। इसलिए मैं चक्कर में पड़ गया हूं और परेशान हूं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आपके इस रुख के खिलाफ कोई आक्षेप नहीं हो सकता। आप दौड़ती हुई गाड़ी से बाहर नहीं कूद सकते। बाहर के व्यक्ति से आपको सफल पथ-प्रदर्शन नहीं मिल सकता। वह तो भीतर से ही मिलना चाहिए। यदि आप अपने ही अन्तर में गहरे पैठकर प्रार्थना-पूर्वक उनका उत्तर ढूंढेंगे तो एक स्थिति ऐसी आयेगी कि

जब अचानक आपकी आंखें खुलेंगी और आपको असत्य और गुप्तता से इतनी घृणा होगी कि गुप्त कार्यकर्ताओं के पास जाकर आप उनसे कहेंगे कि यदि वे अपने ही रास्ते पर चलना चाहते हैं तो आप उनके मार्गदर्शक का काम नहीं कर सकते। तब वे आपका मुंह देखकर ही समझ जायंगे और बहुत सम्भव है कि उनके जीवन में भी इससे एक नया अध्याय आरम्भ हो जाय।"

: ४३ :

मानवता हानि-लाभ के हिसाब से नफरत करती है

दिल्ली में जामिया मिलिया या मुस्लिम राष्ट्रीय विद्यापीठ का पौधा श्री अजमलखां, डा० अन्सारी और अलीभाइयों ने गांधीजी के साथ मिलकर सन् १९२० में असहयोग आन्दोलन के आरम्भ में लगाया था। उसकी रजत जयन्ती के अवसर की यह घटना है। गांधीजी अपने व्यस्त कार्यक्रम के बीच ही एक दिन अचानक उस संस्था को देखने के लिए चले गये। वहां उन्होंने विद्यार्थियों और शिक्षकों की एक पारिवारिक बैठक बुलाई। उसमें एक विद्यार्थी ने पूछा, "हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए हम क्या कर सकते हैं?"

गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "अगर सारे हिन्दू गुंडे

हो जायं और आपको गालियां दें तो भी आप उन्हें अपने सगे भाई मानना न छोड़ें। यही बात मुसलमानों पर लागू होती है। अगर कोई भलाई के बदले भलाई करता है तो वह तो सौदा हुआ। ऐसा तो चोर और डाकू भी करते हैं। मानवता हानि-लाभ के हिसाब से नफरत करती है। अगर सारे हिन्दू या सारे मुसलमान मेरी सलाह मानें तो भारत में ऐसी शान्ति कायम हो जाय जिसे कभी कोई भंग न कर सके। जब बदला लेने के लिए आक्रमण नहीं किया जायगा या बदले में उभाड़ने का प्रयत्न नहीं किया जायगा तो गुंडे छुरे-बाजी के क्रूर कृत्य से थक जायगे। कोई अदृश्य शक्ति उनके उठे हुए हाथ को पकड़ लेगी और वह हाथ गुंडे की दुष्ट आज्ञा मानने से इंकार कर देगा। ईश्वर भला है और वह दुष्टता को एक निश्चित मर्यादा से आगे बढ़ने नहीं देता।"

: ४४ :

मेरे काम में किसीको दखल देने का अधिकार नहीं है

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में नारियां पुरुषों से पीछे नहीं रही थीं। वहां की जेलों में उन्होंने नारकीय यातनाएं सहीं। श्रीमती कस्तूरबा गांधी तो सूखकर कांटा हो गईं। ऐसी ही एक महिला थीं श्रीमती जगरानी। वह जेल से रुग्ण शरीर लेकर निकली थीं। असाध्य रोग ने उनको उस

स्थान पर पहुंचा दिया, जहां जीवन और मरण की संधि है। डाक्टर हताश हो बैठे। आखिर गांधीजी उन्हें फिनिक्स-आश्रम में ले आये। डर्बन से फिनिक्स तक वह रेलगाड़ी में आईं। स्टेशन पर गांधीजी ने उन्हें संभालकर गाड़ी से उतारा और एक ठेलागाड़ी पर लिटा दिया। फिर वह स्वयं उस गाड़ी को चलाने लगे। यह देखकर कई व्यक्ति उनके पास पहुंचे और बोले, "हमारी मौजूदगी में आपको गाड़ी खींचना शोभा नहीं देता। इसे हमें खींचने दीजिए।"

गांधीजी दृढ़ स्वर में बोले, "मेरे काम में किसीको दखल देने का अधिकार नहीं है। जब मैं थक जाऊंगा तब आपको बुला लूंगा।"

और वह दो-ढाई मील तक ठेलागाड़ी खींचकर आश्रम ले गए। वहां उन्होंने श्रीमती जगरानी की परिचर्या का काम कस्तूरबा को सौंप दिया। उनकी अथक और स्नेहमयी सेवा से जगरानी के प्राण सचमुच लौट आये।

: ४५ :

यदि ईश्वर मुझे उठा लेना चाहेगा तो. . .

किसी गलतफहमी के कारण दक्षिण अफ्रीका में कुछ गुमराह मुसलमान गांधीजी के विरुद्ध हो गये थे। जब वह नेटाल से जा रहे थे तो एक मुसलमान ने उनको लक्ष्य करके

सड़ा हुआ अंडा फेंका। वह जाकर बग्घी के पहिए पर गिरा और फूट गया। दूसरा अंडा अंदर पहुंचकर फूटा। अब तो वहां हुल्लड़ मच गया, लेकिन गांधीजी तो सत्याग्रही थे। वह बराबर शांत बने रहे।

उसी रात को एक सार्वजनिक सभा हुई। मुसलमानों में काफी जोश और रोष दिखाई देता था। डर था, कहीं दंगा न हो जाय! लेकिन गांधीजी अब भी वैसे ही शांत थे। उसी शांत भाव से वह भाषण देने के लिए उठे और दिन की घटना का जिक्र करते हुए बोले, "मुझे मालूम है कि रास्ते में कुछ भाई मुझपर हमला करना चाहते थे। उनसे मुझे कुछ भी नहीं कहना है। वे भले ही मुझे मारें। मैं मार खाने को तैयार हूं, लेकिन जिन भाइयों को मेरी रक्षा की चिन्ता है, उनसे मुझे कुछ निवेदन करना है। मीर आलम ने मुझपर आक्रमण किया था तब भगवान को मेरा मरना मंजूर नहीं था। इसलिए मैं नहीं मरा। यदि ईश्वर मुझे उठा लेना चाहेगा तो किसीसे मेरी रक्षा न हो सकेगी। मैं इंगलैंड जा रहा हूं। यदि मेरा जहाज बीच समुद्र में डूब जाय तो मेरे रक्षक क्या करेंगे? क्या वे ईश्वर से लड़ेंगे? इसलिए यदि कोई मुझे मारता है तो उसे खुशी से मारने दो, पर तुम मेरी रक्षा करने और बदला लेने का विचार छोड़ दो।"

यहां हिन्दी का ही सम्मान होना चाहिए

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी दक्षिण अफ्रीका से सन् १९१९ में अपने बच्चों को गुरुकुल में दाखिल कराने के लिए हिन्दुस्तान आये। उस समय वह दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के प्रतिनिधि के रूप में अमृतसर-कांग्रेस में भी शरीक हुए थे। स्वाभाविक था कि वह देश के सभी प्रमुख नेताओं से मिलते। गांधीजी से तो वह पूर्व-परिचित थे ही, इसलिए सबसे पहले वह उन्हींसे मिलने गये। उस समय उनकी सेवा में स्वामीजी ने जो परिचय कार्ड भेजा था, वह अंग्रेजी में छपा हुआ था।

गांधीजी ने उन्हें तुरन्त अपने पास बुलाया और मुस्कराते हुए बोले, "तुम हिन्दी के इतने बड़े हिमायती और तुम्हारा कार्ड अंग्रेजी में! यह कैसी बात है?"

लज्जा और ग्लानि से जैसे स्वामीजी गड़ गये। फिर भी सफाई देते हुए बोले, "यह कार्ड दक्षिण अफ्रीका में ही छपा था। इसीका उपयोग कर रहा हूं।"

इस स्पष्टीकरण से गांधीजी संतुष्ट होनेवाले नहीं थे। कहा, "लेकिन यह तो हिन्दुस्तान है और यहां हिन्दी का ही सम्मान होना चाहिए।"

जो कहना चाहो, सरल सीधे शब्दों में कहो

दक्षिण अफ्रीका में एक बार गांधीजी ने जनरल स्मट्स की नीति पर स्वामी भवानी दयाल संन्यासी को एक समालोचनात्मक लेख लिखने का आदेश दिया। स्वामीजी ने आधी रात तक जागकर एक लम्बा और लच्छेदार लेख तैयार किया। सवेरे उसे लेकर गांधीजी के पास गये। उन्होंने उस लेख को पढ़ा। पहले तो वह खूब हँसे, फिर गंभीर होकर बोले, "लेख तो अच्छा है। लिखने में काफी मेहनत की गई है, पर यह 'इंडियन ओपिनियन' के अग्रलेख के योग्य नहीं बन सकता। शब्दों के घटाटोप में भाव ऐसे ढंक गये हैं कि वे साधारण पाठक के लिए बोधगम्य नहीं रहे। थोड़े-से-थोड़े शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कहना ही लेखक की खूबी है। व्यर्थ के शब्दों का व्यवहार करना मानो लेखन-कला के साथ व्यभिचार करना है। जो कुछ कहना चाहो, सीधे ढंग से सरल शब्दों में, साफ-साफ कहो। उसे अलंकार के आवरण से मत ढंको। दूसरी बात यह है कि इस लेख में जनरल स्मट्स के विरुद्ध जो बातें लिखीं गई हैं, क्या उन्हें तुम उनके मुंह पर कहने का साहस कर सकते हो? यदि नहीं तो फिर तुम्हें उन बातों के लिखने का क्या अधिकार है? जब किसी

की नीति की टीका करना जरूरी समझो तो कल्पना कर लो कि वह तुम्हारे सामने बैठा है। जो बात बिना किसी संकोच के उसके मुंह पर कह सकते हो, वही और उतनी ही लिखनी चाहिए। उससे एक शब्द भी अधिक नहीं। यह याद रखो कि सार्वजनिक अखबार में जिस व्यक्ति की तुम टीका कर रहे हो, वह उसकी दृष्टि से गुजरे बिना नहीं रहेगी। यह भी मत भूलो कि किसी नेता के विचारों और कार्यों की आलोचना करना लोकहित की दृष्टि से उचित हो सकता है, पर उसपर व्यक्तिगत आक्षेप करना पत्रकार के लिए कलंक है।"

: ४८ :

यह उपकार मुझे नहीं लेना है

नमक-सत्याग्रह के दिनों की बात है। गांधीजी उन दिनों यरवदा-जेल में थे। एक दिन वह शौच के लिए कमोड पर बैठे ही थे कि एकाएक बेहोश हो गये। नीचे गिरते-गिरते उन्होंने जोर से काकासाहब कालेलकर को पुकारा। उन दिनों काकासाहब वहीं पर थे।

आवाज सुनकर काकासाहब दौड़े हुए गये। देखा कि गांधीजी गिर गये हैं और उठ नहीं पा रहे हैं। बड़ी कठिनता से उन्होंने उठाया और सहारा देकर कमरे में ले आये। फिर बिस्तर पर लिटा दिया।

दूसरे या तीसरे दिन सदा की तरह सिविल सर्जन कर्नल स्टील गांधीजी की तबीयत का हालचाल पूछने के लिए आये। पन्द्रह दिन में वह एक बार अवश्य आ जाते थे। आते ही उस दिन उन्होंने पूछा, "आप कैसे हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "ठीक हूं।"

अपनी बेहोशी की उन्होंने कोई चर्चा नहीं की। काका-साहब को बड़ा आश्चर्य हुआ। सिविल सर्जन के चले जाने पर गांधीजी ने कहा, "तुमको लगा होगा कि कमोड पर बेहोश हो जाने की बात करूंगा, लेकिन मैं उस बात को महत्व देना नहीं चाहता। हो सकता है, ये लोग उसका बड़ा प्रकरण बनाकर मुझे रिहा कर दें। यह उपकार मुझे नहीं लेना है। इसलिए मैंने थोड़े में ही बात समाप्त कर दी और वैसे भी अब तो मेरी तबीयत अच्छी है ही।"

: ४९ :

"जी साहब !"

श्री गोपालकृष्ण गोखले गांधीजी के बुलाने पर दक्षिण अफ्रीका गये थे। वहां उन्होंने उनका स्वागत शानदार ढंग से किया। परन्तु इससे भी बड़ा सत्कार किया स्वयं गांधीजी ने। इस प्रवास में गोखलेजी ने अधिक आनन्द उठाया या गांधीजी ने, इसका निर्णय करना कठिन है। दोनों के हृदय अपने-अपने आनन्द को ही दूसरे से अधिक आह्लादजनक

मानते थे। गोखलेजी कुछ पढ़ते-पढ़ते पुकारते, "अरे, वह मेरा धोबी कहां गया ?"

पास के कमरे से गांधीजी जल्दी-जल्दी आते, "क्यों, क्या बात है, साहब ?"

गोखलेजी कहते, "क्या, क्या है ? तुम्हें ध्यान नहीं रहता। देखो, मेरी कमीज कितनी गन्दी हो गई है।"

गांधीजी प्रसन्न, मन कमीज ले जाते और खुद धोकर ले आते। थोड़ी देर होती तो गोखलेजी अपने बिस्तर की चादर बिखेर देते और चिल्लाते, "अरे, मेरा बिस्तर बिछानेवाला कहां गया ? चादर अच्छी तरह क्यों नहीं बिछाई ?"

गांधीजी आते और "जी साहब" कहकर चादर अच्छी तरह बिछा जाते।

इस तरह गोखलेजी दिन में कितनी ही बार गांधीजी को 'मेरा नौकर', 'मेरा धोबी', 'मेरा नाई', 'मेरा पाखाना साफ करनेवाला' आदि-आदि सम्बोधनों से पुकारते और गांधीजी प्रसन्न-मन हाजिर हो जाते। उनके सभी निजी काम दूसरा कोई न करे, वह स्वयं करें, ऐसी गांधीजी की तीव्र इच्छा और आग्रह रहता था। गोखलेजी यह जानते थे, इसलिए कुछ मज़ाक, कुछ आनन्द और गहरे स्नेह-भाव से गद्गद् होकर इसी तरह पुकारा करते थे।

मुझे ऐसा कुदरती वायुमण्डल अधिक पसन्द है

यरवदा-जेल के यूरोपियन वार्ड में दो मुख्य बैरकें थीं। दोनों लगभग समानान्तर थीं। दोनों के बीच में बगीचा था और बीच में ही एक सिरे पर स्नानघर था। इस तरफ के सिरे पर पाव रोटी की भट्टी थी। दूसरे सिरे पर सामान्य शौचालय था। इस भट्टी और शौचालय के बीच की पूरी जमीन में गांधीजी और काकासाहब सुबह-शाम टहला करते थे।

बारिश होने पर उनकी लम्बी बैरेक के कमरों के पीछे जो लम्बा बरामदा था, उसमें टहलते समय गांधीजी काकासाहब को दीवार की तरफ रखते थे और स्वयं खुले हुए स्थान में चलते थे। चलते-चलते बातचीत करते हुए असावधानी से काकासाहब बरामदे की तरफ से नीचे न गिर जायं, शायद यही विचार गांधीजी के मन में उठा होगा। इस विधि में कभी भूलकर भी अन्तर नहीं आया। एक दिन काकासाहब से न रहा गया। उन्होंने पूछा, "आप मुझे दीवार की तरफ रखते हैं, इसकी वजह क्या है?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "कोई वजह नहीं।"

यह बात तो यहीं समाप्त हो गई, लेकिन काकासाहब ने

अनुभव किया कि जिन दिनों वर्षा नहीं होती, उन दिनों गांधीजी बरामदे में चलने के बजाय नीचे की खुली जमीन पर चलना अधिक पसन्द करते हैं। एक तरफ बैरक थी, दूसरी तरफ जेल की दीवार। दोनों के बीच की खुली जगह में ही घूमते थे। जगह ऊबड़-खाबड़ होने के कारण चलते समय सावधानी बरतनी पड़ती थी। एक दिन काकासाहब ने गांधीजी से कहा, "बरामदे में पत्थर का फर्श है। वहां जमीन की ओर नहीं देखना पड़ता, वहीं हम क्यों न घूमें ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम्हारी अभिरुचि शहरी है। मुझे ऐसी ऊबड़-खाबड़, ऊंची-नीची, कुदरती जमीन पर ही चलना अधिक पसन्द है। बरामदे में सिर पर छप्पर है, यहां सिर पर आसमान है। यह लाभ कुछ कम है। मुझे ऐसा कुदरती देहाती वायुमण्डल अधिक पसन्द है।"

: ५१ :

खूब-खूब जीओ और सेवा करते रहो

गांधीजी सर्वतोमुखी सुधारक थे। समाज की हर कमी पर उन्होंने प्रहार किया और नई रीतियां चलाईं। विवाह-प्रणाली भी उनकी निगाह से बची न रह पाई। अपने आश्रम में उन्होंने बड़ी सादगी के साथ कई शादियां करवाईं। उनके पुत्र श्री रामदास गांधी का विवाह इसी प्रकार हुआ। उस दिन वर-वधू ने उपवास किया, गोशाला और कुएं के आस-

पास सफाई की, पौधों को पानी दिया, कताई की और गीता के बारहवें अध्याय का पाठ किया।

उनके वस्त्र श्वेत खादी के थे। शरीर पर कोई आभूषण नहीं था। न बाजे, न भोज, न दहेज। वर-वधू में केवल मंगल-मालाओं का आदान-प्रदान हुआ। गांधीजी ने भेंट के रूप में गीता, भजनावली और दो तकलियां दीं। वधू की मां ने चरखा दिया।

विवाह-विधि कोई ६० मिनट में पूर्ण हो गई। उन्हें आशीर्वाद देते हुए गांधीजी बोले, "इस बच्चे ने मुझे कभी धोखा नहीं दिया, न कभी झूठ बोला।"

रामदास को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे निश्चय है कि भले ही सारा संसार तुझे धोखा देता रहे, परन्तु तू कभी किसीको धोखा नहीं देगा। अपनी पत्नी का आदर करना। तू उसका मालिक नहीं, सच्चा मित्र है। मुझे विश्वास है कि तू उसके शरीर और आत्मा को पवित्र मानेगा। निश्चय ही वह भी तेरे शरीर और आत्मा को ऐसा ही मानेगी। इसके लिए तुझे अपने जीवन को सादा, संयमी और परिश्रमी बनाना होगा। तू जानता है कि हमने स्वेच्छापूर्वक और पूरी तरह से सोच-समझकर गरीबी का व्रत लिया है, इसलिए जिस प्रकार हमारे देश के मजदूर और किसान अपने गाढ़े पसीने की रोटी खाते हैं, उसी प्रकार तुझे भी अपने पसीने की ही रोटी खानी है।

"मैंने तुम्हें कोई भेंट नहीं दी। तकली और मेरी प्यारी गीता तथा भजनावली के अलावा मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे

सकता । सूत की यह माला तेरा कवच है। यदि मैं अपने मित्रों से तेरे लिए कीमती भेंटें जुटाने की कोशिश करता तो संसार की नजरों में झूठा और पाखंडी ही सिद्ध होता। इसलिए आज मैं तुझे वही चीज दे रहा हूं, जो सचमुच मेरे जैसे पिता को देना उचित है। गीता मेरे लिए रत्नों की खान रही है। वह तेरे लिए भी ऐसी ही हो। जीवन-पर्यन्त वह तेरी मदद और पथ-प्रदर्शन करती रहे। खूब-खूब जीओ और सेवा करते रहो।"

इस समय गांधीजी ने यह भी आशा प्रकट की कि आश्रम के अन्दर यह अन्तिम सजातीय विवाह होगा। अब से दो भिन्न जातियों में ही विवाह हों। आश्रम को इसमें नेतृत्व करना चाहिए। लड़कियों का विवाह अब बीस वर्ष के पहले न हो। पच्चीस वर्ष तक न हो तो और भी अच्छा।

: ५२ :

शर्त ढीली कर दी जाय तो आश्रम ही न तोड़ दिया जाय

एक रोज शाम की प्रार्थना के बाद गांधीजी के प्रवचन के समय एक आश्रमवासी ने प्रश्न किया, "पूरी कोशिश करने पर भी जिससे नियम भंग हो जाय, उसे आश्रम छोड़ने के लिए विवश करना उसके साथ अन्याय करना है। इससे वह हिम्मत हार जायगा और उसका अकल्याण होगा।"

उसी समय आश्रम से कुछ ही दूर रेलवे पुल पर से होकर गाड़ी साबरमती स्टेशन से अहमदाबाद जा रही थी। उसी को लक्ष्य करके गांधीजी बोले, "यह जो रेलगाड़ी जा रही है, इसकी आवाज सुन रहे हो न ? रवाना होने का उसका समय पहले से ही निश्चित है। एक मिनट भी देर होने से मुसाफिर उसे नहीं पा सकता। इसमें रेलगाड़ी का दोष है या मुसाफिर का! देर होने से गाड़ी छूट जाने पर क्या गाड़ी ने मुसाफिर के प्रति हिंसा की ? हिंसा-अहिंसा के तत्त्व को ठीक न समझने से ही हमारे भीतर ऐसी असंगत शंकाएं उठती हैं। आश्रम किसी एक व्यक्ति के कल्याण के लिए नहीं है। सबका कल्याण-साधन उसे कराना है। सब मिल-जुलकर जो नियम बनाते हैं, उनका भंग आश्रम की नींव पर ही कुठाराघात करना है। उन नियमों को स्वीकार करके ही कोई आश्रम में प्रवेश पाता है। नियमों को पालो तो रहो, न पाल सको तो चले जाओ। इसमें हिंसा-अहिंसा का प्रश्न ही कहां पैदा होता है ?"

दूसरे आश्रमवासी ने कहा, "बापूजी, और सब नियमों का पालन करना तो ज्यादा कठिन नहीं है, पर सवेरे ठीक वक्त पर उठकर प्रार्थना में शामिल होना संभव नहीं है। इसलिए सवेरे की प्रार्थना में अनिवार्य रूप से ठीक वक्त पर सम्मिलित होने की शर्त ज़रा ढीली कर दी जाय।"

गांधीजी ने गंभीर स्वर में पर मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "शर्त ढीली कर दी जाय तो आश्रम ही न तोड़ दिया जाय।"

तीसरे सज्जन ने मानो व्यंग्य किया, "बापूजी, यह सब कष्ट सह सकते हैं, पर सवेरे की मीठी नींद को तोड़ा जाना सबसे ज्यादा दुख देता है।

गांधीजी हँस आये और बोले, "हां-हां, यह तो मैं जानता हूं..."

इसी क्षण एक और सज्जन बोल उठे, "कभी-कभी नींद बड़ी गहरी रहती है और घंटे की भी आवाज सुनाई नहीं देती। इस संकट से बचने का कोई उपाय बताइये।"

गांधीजी पूर्ववत: बोले, "इतनी छोटी-सी बात को हम संकट समझने लगेंगे, तब तो स्वराज्य ले चुके। जो जागना चाहेगा, उसे जगानेवाला जरूर मिल जायगा। मेरे पास आकर सोओ। चार बजे तो क्या, मैं तुम्हें तीन बजे ही जगा दूं।"

यह सुनकर सब लोग हँस पड़े। तभी एक सज्जन ने सुझाव दिया कि एक घंटा नाकाफी होने के कारण तीन-चार घंटे बजाये जाया करें। गांधीजी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, लेकिन उन्हें एक और उपाय सूझ आया। उनके सामने ही इमामसाहब बैठे हुए थे। उनकी ओर देखकर वह बोले, "क्यों इमामसाहब, आप लोगों की नमाज का वक्त आश्रम की प्रार्थना से बेमेल तो नहीं पड़ता? अच्छा हो, अगर इस बुढ़ापे में भी आप हमारी मदद करें। जब सवेरे आश्रम का घंटा बजे तब आप अपने मकान की छत से अजान लगाना शुरू कर दें।"

मुक्त अट्टहास के बीच इमामसाहब ने इस प्रस्ताव को

सहर्ष स्वीकार कर लिया। गांधीजी फिर बोले, "दो घंटे तो हो गये। इनसे भी काम न चले तो जितने चाहो उतने घंटे दे सकता हूं। सब लोग अपनी-अपनी थाली और चम्मच अपने सिरहाने रखकर सोएं और पहले घंटे की आवाज सुन-कर जो भी जाग उठे, वह दूसरों को जगाने के लिए चम्मच से थाली बजाने लगे।"

: ५३ :

तुम्हारे पति सत्य के लिए जेल में तपस्या कर रहे हैं

दक्षिण अफ्रीका में जिस समय सत्याग्रह-आन्दोलन पूरे यौवन पर था, उसी समय की यह घटना है। सैकड़ों सत्याग्रही जेल के सींकचों के पीछे बन्द थे और उनके परिवार रहते थे टाल्सटाय-आश्रम में। गांधीजी को जब भी अवकाश मिलता, वह इनको सांत्वना देते रहते थे। उनके काम भी कर देते थे। छोटे-से-छोटा काम भी करने में उन्हें हिचक नहीं हुई।

एक दिन वह कपड़े धोने के लिए निकले। अलग-अलग सब बहनों के पास गये। बोले, "धोने के लिए कपड़े मुझे दे दो। नदी दूर है और आपके बच्चे छोटे हैं। शरमाओ नहीं। ये गन्दे कपड़े ही मुझे दे दो। तुम्हारे पति सत्य के लिए जेल में तपस्या कर रहे हैं। तुम्हारी देखभाल करना हमारा कर्त्तव्य है। लाओ, सब कपड़े दे दो।"

बहनों को संकोच तो होता है, लेकिन वे कपड़े निकाल-कर दे देतीं। गठरी बांधकर गांधीजी उन्हें नदी पर ले जाते, धोते, सुखाते और फिर सबकी तह करके, सबके घर पहुंचा देते।

: ५४ :

मैंने जो अफ्रीका में सीखा, वह भूलने के लिए नहीं है

उस दिन गांधीजी को गुजरात विद्यापीठ की एक बैठक में जाना था, लेकिन उन्हें पास के एक गांव में अनुमान से अधिक समय लग गया। अब प्रश्न था कि बैठक में कैसे पहुंचा जाय। तभी क्या देखा, एक आश्रमवासी साइकिल पर चले आ रहे हैं। गांधीजी के पास आकर वह उतर पड़े। बोले, "मैं आपको याद दिलाने के लिए आया हूं। आपको गुजरात विद्यापीठ की एक सभा में जाना है न! केवल दस मिनट शेष रह गये हैं।"

गांधीजी बोले, "वही तो सोच रहा हूं। दस मिनट में कैसे पहुंचा जाय? अच्छा, अपनी यह साइकिल मुझे दो।"

चकित होकर उस भाई ने कहा, "आप साइकिल पर जायंगे? आपने चलाना सीखा है? शहर में इतनी भीड़ है, कहीं गिर गये तो?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैंने जो अफ्रीका में सीखा है

वह भूलने के लिए नहीं है । साइकिल का प्रयोग करना मुझे आता है । सबको आना चाहिए । लाओ, साइकिल मुझे दो और समय बर्बाद मत करो ।"

दूसरे ही क्षण गांधीजी साइकिल पर बैठकर चल पड़े गुजरात विद्यापीठ की ओर । फिर देखते-देखते आंखों से ओझल हो गये ।

: ५५ :

तुम्हारे लिए भी मैं बड़ा आदमी और महात्मा बन गया !

गांधीजी के आश्रम में अनेक व्यक्ति रहते थे । उनमें बीमार भी होते थे, जिनकी देखभाल वह स्वयं करते थे । उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से अनोखा युद्ध छेड़ रखा था, लेकिन अपने बीमारों को देखना वह कभी नहीं भूलते थे । ये दोनों काम उनके लिए एक जैसे महत्वपूर्ण थे ।

एक दिन बा बीमार पड़ गईं । गांधीजी के पास ही एक कुटिया में वह रहती थीं । गांधीजी दिन में दो बार उन्हें देखने अवश्य जाते थे । लेकिन एक दिन वह किसी महत्वपूर्ण कार्य में इतने उलझे कि बा के पास जाने का समय आकर चला गया ।

उधर बा राह देखते-देखते थक गईं, लेकिन गांधीजी

कैसे आ सकते थे ! ठीक समय पर दूसरे दिन ही वह वहां पहुंचे। बा को यह अच्छा नहीं लगा था। वह बापू को देखकर कुछ भी नहीं बोलीं और चुपचाप लेटी रहीं। गांधीजी ने सदा की भांति पूछा, "क्यों, आज कैसी तबीयत है ?"

दुखी बा को अब जैसे क्रोध आ गया। बोलीं, "आप तो बड़े आदमी ठहरे। दुनिया आपको महात्मा कहती है। आप उसी दुनिया की चिन्ता कीजिये। मेरी चिन्ता छोड़ दीजिये।"

गांधीजी समझ गये। वह मुस्कराये और बड़े स्नेह के साथ बा के मस्तक पर अपना हाथ रखकर बोले, "अच्छा, तुम्हारे लिए भी मैं बड़ा आदमी और महात्मा बन गया !"

जैसे ये ही शब्द सुनने के लिए बा क्रुद्ध हुई हों। दूसरे ही क्षण उनका मन पिघल आया और दोनों सहज भाव से बातें करने लगे।

: ५३ :

बच्चे को कैसे सजाना चाहिए, तुम्हें मालूम नहीं

एक बार देशबन्धु चित्तरंजनदास से मिलने के लिए गांधीजी उनके घर गये। उस समय देशबन्धु बैरिस्ट्री कर रहे थे। उनकी पुत्री श्री अपर्णादेवी वहीं पर थीं और उनके साथ था उनका प्रथम पुत्र। वह अभी शिशु ही था और नाना ने उसको सिर से पैर तक पहनाने के लिए सोने के कीमती गहने

दिये थे। जब मां अपने बच्चे को आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए महात्माजी के पास लाई तो उसे गहनों से पूरी तरह सजा दिया था। महात्माजी ने बच्चे को गोद में ले लिया और उसे खिलाने लगे। फिर बोले, "बच्चे को कैसे सजाना चाहिए, यह तुम्हें मालूम नहीं।"

इतना कहकर उन्होंने बच्चे को बिस्तर पर बिठाया और उसके गहने उतार-उतारकर एक कपड़े पर रखने लगे। श्रीमती कस्तूरबा ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "आप कितने निष्ठुर हैं, जो नन्हें-से प्यारे बच्चे के सारे गहने उतार ले रहे हैं!"

गांधीजी मुस्कराये और बोले, "तुम कुछ नहीं समझतीं। ज़रा देखो तो मैं क्या कर रहा हूं?"

जब सब गहने उतार चुके तो उन्होंने बच्चे को बिस्तर पर लिटा दिया। बोले, "देखो, अब यह बच्चा अपने प्राकृतिक सौन्दर्य में एक राजा की तरह कितना ऐश्वर्यवान लग रहा है!"

उसके बाद वह बच्चे की माता ी ओर मुड़े और कहा, "मैं बच्चे की ओर से गरीबों के लिए उसके उपहार के रूप में गहनों की यह राशि लेता जा रहा हूं। अब आप मेहरबानी करके अपने गहनों का संदूक ला दीजिये।"

अपर्णादेवी सहसा रुंआसी-सी हो आईं, लेकिन संदूक तो उन्हें लाना ही था। गांधीजी ने बारीकी से गहनों को देखा और उनमें से कुछ बड़े गहने छांट लिये। बोले, "देखो, तुम एक महापुरुष की पुत्री होने के नाते जो कुछ मैं कह रहा हूं

उसे समझ सकती हो। मैं ये गहने तुम्हारे दान के रूप में ग्रहण कर रहा हूं। वादा करो कि तुम फिर कभी इनकी ऐवज में दूसरे गहने नहीं बनवाओगी।"

कुछ क्षण पहले जो रुंआसी हो आई थीं, उन्होंने ही अब मुक्ति, आनन्द और शान्ति का अनुभव किया।

: ५७ :

मैं यहां 'करने या मरने' आया हूं

१३ सितम्बर, १९४७ को गांधीजी पुराने किले में मुस्लिम शरणार्थी शिविर देखने गये। वातावरण अत्यन्त उत्तेजित था। कुछ शरारती लोगों के कारण ये लोग बहुत कष्ट पा रहे थे। इसीलिए जैसे ही गांधीजी की कार दरवाजे के अन्दर घुसी, एक क्रुद्ध भीड़ ने उनको घेर लिया। वे गांधी-विरोधी नारे लगा रहे थे। एक आदमी ने झपटकर कार का दरवाजा जबर्दस्ती खोलने का प्रयत्न किया। तब ड्राइवर ने कार को तेजी से आगे बढ़ा दिया, लेकिन गांधीजी ने फौरन उसे रोका और वह कार के नीचे उतर पड़े। भीड़ ने उन्हें चारों ओर से बुरी तरह दबा लिया। लेकिन उन्होंने भीड़ से घास के मैदान में चलने के लिए कहा। कुछ लोग वहां गये भी, लेकिन अधिकतर क्रोध से उफनते हुए उनके चारों ओर खड़े रहे। ऐसा लगता था जैसे वे हमला करने के लिए उतावले हो रहे हों। गांधीजी की धीमी आवाज दूर तक नहीं पहुंचा

पा रही थी। उन्होंने अपने एक साथी के कंधे का सहारा लेकर उससे अपने शब्दों को पूरे जोर से चिल्लाकर दोहराने को कहा। गांधीजी बोले, "ईश्वर सबके लिए एक ही है। मैं हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और सिखों में कोई अन्तर नहीं मानता। वे सब मेरे लिए एक जैसे ही हैं।"

भीड़ अब भी क्रोध में भरी हुई प्रतिवाद में नारे लगा रही थी। उनको शांत रहने और क्रोध तथा भय की भावना को त्यागने की प्रार्थना करते हुए गांधीजी फिर बोले, "हम सबकी अन्तिम शरण ईश्वर ही है, कोई मनुष्य नहीं, फिर चाहे वह कितना ही ताकतवर क्यों न हो ! मनुष्य ने जो कुछ बिगाड़ रखा है, उसे ईश्वर ही बनायगा। जहांतक मेरा सवाल है, मैं यहां 'करने या मरने' आया हूं।"

गांधीजी ने कोई नई बात नहीं कही, किन्तु उन शब्दों के पीछे जो भावावेग था, भीड़ के लोगों ने उसे सुना और समझा। उनके मुर्झाए हुए चेहरे पर गम्भीर व्यथा और उदासी को देखा। देखते-देखते सारा शोरगुल बंद हो गया। कुछ लोगों की आंखों से आंसू बहने लगे और वे भरे हुए गले से अपना दुख सुनाने लगे। गांधीजी ने बड़ी सहानुभूति से उनकी बातें सुनीं और वादा किया कि वह उनकी सहायता के लिए अपनी शक्ति-भर कुछ न उठा रखेंगे।

कुछ क्षण पूर्व जो खून के प्यासे हो रहे थे, वे ही अब उनके दोस्त बन गये।

वे बन्धनमुक्त हो गये

गांधीजी बहनों से हमेशा कहते थे कि जेवर मत पहनो। सेठ जमनालालजी गांधीजी के सिद्धान्तों को जीवन के हर क्षेत्र में उतार लेना चाहते थे। घर की स्त्रियों ने जेवर त्याग दिया, लेकिन मन्दिर में भगवान अब भी जेवर पहनते थे। कुछ ट्रस्टियों और पुजारियों का आग्रह था कि मूर्तियों के गहने न उतारे जायं। तभी एक दिन मोटी खादी के कपड़े पहने एक व्यक्ति श्रीमती जानकीदेवी बजाज के पास आया और बोला, "मैं दर्जी हूं, मुझे काम दीजिए।

उसे खादी पहने देखकर श्रीमती जानकीदेवी के मन में करुणा जाग उठी। वह उसे मन्दिर में ले गईं। मूर्तियों की पोशाक बनानेवाले दर्जी का देहान्त होगया था। उस व्यक्ति को मूर्तियां दिखाकर कपड़े सिला लेने का विचार उनके मन में था। उसने माप आदि की दृष्टि से मूर्तियों को देखा और दूसरे दिन आने की बात कहकर चला गया।

दूसरे दिन सुबह चार बजे पुजारीजी जब मंदिर पहुंचे तो देखा, दरवाजों के ताले टूटे पड़े हैं। दौड़े-दौड़े सेठजी के पास आये। सब लोग मंदिर में इकट्ठे हो गये। पुलिस में रिपोर्ट कर दी गई। जमनालालजी गांधीजी के पास पहुंचे और उन्हें बताया, "मन्दिर का ताला टूट गया है और वहां जो

जवाहरात आदि थे, सब चोरी होगये हैं।"

गांधीजी तुरन्त बोले, "अच्छा हुआ, भगवान राजी होंगे। वे बंधनमुक्त होगये। ले जानेवाला भी राजी होगा!"

गांधीजी की यह बात सुनकर जमनालालजी भी चिन्ता-मुक्त हो गये। उन्होंने चोरी की तहकीकात, जांच-पड़ताल, सब बन्द करवा दी। बोले, "भगवान राजी, बापू राजी, चोर राजी, तो मैं भी राजी।"

: ५९ :

मौत बार-बार नहीं आती

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद देश में जो भयंकर तूफान आया, उससे गांधीजी बहुत दुखी हो उठे थे। उन दिनों वह दिल्ली में थे। वहां के मुसलमान बहुत परेशान थे। एक दिन ६०-७० प्रतिष्ठित मुसलमान, जिनमें खानबहादुर अब्दुल्ला जैसे मुस्लिम लीगी भी थे, उनसे मिलने आये और देर तक अपनी दर्द-भरी कहानी सुनाने रहे।

गांधीजी ने पूछा, "आप सब कह चुके तो अब मेरे एक सवाल का जवाब दीजिए कि आप लोग भारत में रहना चाहते हैं या पाकिस्तान जाना चाहते हैं?"

कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला। फिर खानबहादुर अब्दुल्ला ने बड़ी दर्द-भरी आवाज में कहा, "महात्माजी, हम लोग यहीं रहना चाहते हैं।"

कुछ क्षण गांधीजी सोचते रहे। अनंतर बोले, "फिर मेरा काम आसान है। आपकी परेशानियों का समाधान भी आसान है। आप यहीं रहने और यहीं मरने का पक्का इरादा कर लीजिये। मौत बार-बार नहीं आती। खुदा पर भरोसा रखिये। जो हथियार आपके पास छुपे पड़े हों, सब डिप्टी कमिश्नर को दे दीजिये। जब लोग आपके घर पर हमला करने आयें तो उनका मुकाबला न कीजिये। मरने के लिए अपनी गर्दन झुका दीजिये। मेरे पास यही उपाय है और मेरा विश्वास है कि इसी उपाय में आपकी रक्षा है। जहां रात को हमले का सबसे ज्यादा खतरा हो वहां, मैं आपके साथ सोने को तैयार हूं।"

सभा में एकदम सन्नाटा छा गया। तीन-चार मिनट की शांति के बाद खानबहादुर अब्दुल्ला ने पांव छूकर कहा, "ठीक है महात्माजी, अब मैं यहीं मरूंगा। मैं आपकी बात समझ गया।"

सभा समाप्त हो गई। उसके बाद उतने तेज हमले नहीं हुए। कुछ हथियार भी थानों में जमा कराये गए और परिवार के कई लोगों के पाकिस्तान चले जाने के बाद भी खानबहादुर अब्दुल्ला मृत्युपर्यन्त यहीं रहे।

वह बड़े हैं, मैं नहीं मारूंगा।

बचपन में गांधीजी को प्यार से सब 'मोनिया' कहकर पुकारते थे। यह उनके नाम मोहन का घरेलू रूप था। दूसरे बालकों की तरह मोनिया को भी खेलने-कूदने का बहुत शौक था। एक दिन खेलते-खेलते वह अपने बड़े भाई के साथ एक बाग में जा निकला और बहुत मना करने पर भी एक पेड़ पर चढ़ गया। ऊपर जाकर वह एक शाखा पर बैठ गया। उसकी टांगें नीचे लटक रही थीं।

सहसा बड़े भाई ने पास आकर उसकी टांग खींच ली। वह धड़ाम-से नीचे आ गिरा। रोते-रोते वह मां के पास पहुंचा और कहा, "मुझे भैया ने मारा है।"

मां हँसी-हँसी में बोली, "उसने तुझे मारा है, तो तू भी उसे मार। मेरे पास शिकायत लेकर क्यों आया है?"

सुनकर मोनिया को बड़ा अजीब-सा लगा। सोचने लगा—बड़े भाई को मारूं, यह कैसी बात मां कहती है! बोला, "ऐसा सिखाती हो। क्या मैं मारूं? बड़ों को कहीं मारा जाता है!"

मां पूर्वतः बोली, "इसमें कोई बात नहीं। तू तो अभी छोटा है। छोटे बच्चे और फिर भाई-बहन तो ऐसी मार-पीट कर ही लेते हैं।"

परन्तु नन्हा मोनिया इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। दृढ़ स्वर में बोला, "तू कैसी मां है ! जो मारता है उसे तो समझाती नहीं, मुझे गलत काम करने को कहती है ! बड़े भाई को मारना सिखाती है ! वह बड़े हैं। मैं नहीं मारूंगा।"

जो मां अबतक हँस रही थी, मोनिया का यह रूप देखकर गर्व से भर उठी। उसे गोदी में उठाकर बोली, "बता तो, तू ऐसी बातें कहां से सीखता है ? जाने विधाता ने तेरे लिए क्या लिखा है !"

: ६१ :

पैसा उछालकर समस्या सुलझा लेना बुरा नहीं

साबरमती के व्यवस्थापक मगनलाल गांधी का बिहार में एकाएक देहावसान हो गया। गांधीजी के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई। मगनभाई उनके भतीजे ही नहीं, एक बहुत ही प्रिय सहयोगी भी थे। उनकी इच्छा थी कि बिहार में उनका अधूरा काम उनकी बड़ी बेटी राधाबहन पूरा करें। लेकिन राधा की मां सन्तोषबहन उसको अपने पास ही रखना चाहती थीं। कस्तूरबा भी सन्तोषबहन के साथ थीं। स्वयं राधाबहन अपने पिता की अन्तिम इच्छा को पूर्ण करने के पक्ष में थीं।

गांधीजी को इस मृत्यु से बहुत बड़ा धक्का लगा था। वह दिवंगत आत्मा को सन्तोष देने के पक्ष में थे, परन्तु सन्तोषबहन और बा के विरोध के कारण वह बड़ी दुविधा में पड़ गये। यदि वह राधाबहन को बिहार भेजते हैं, तो उन्हें सन्तोषबहन की नाराजगी का डर था। वह शायद यह समझतीं कि गांधीजी उनके दुःख को नहीं अनुभव कर रहे हैं। नहीं भेजते तो मगनभाई की आत्मा और उनके अधूरे काम का विचार उन्हें सता रहा था। अब इस प्रश्न का निर्णय कैसे हो? राधाबहन पर तो वह छोड़ा नहीं जा सकता। उन्हें ही कुछ करना होगा। एक अंतर्द्वंद्व उन्हें परेशान करने लगा। सिद्धान्त का प्रश्न होता तो वह उसको सहज ही हल कर देते, परन्तु यहां तो भावनाओं का संघर्ष था।

आखिर उन्हें एक तरकीब सूझ ही गई। क्यों न पैसा उछालकर इसका निर्णय कर लिया जाय? यह एक प्रकार से दैवी निर्णय होगा।

आश्रमवासियों को यह बात पसन्द नहीं आई। उन्होंने आलोचना करते हुए कहा, "यह तो पलायनवृत्ति है, निरा अन्धविश्वास। गांधीजी को ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।"

आलोचना के ये स्वर गांधीजी तक पहुंच गये। इसलिए प्रार्थना समाप्त होने के बाद इस समस्या की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "जहां सिद्धान्त या धर्माधर्म का प्रश्न खड़ा न होता हो और केवल भावनाओं का संघर्ष हो वहां इस प्रकार चिट्ठी डालकर या पैसा उछालकर किसी समस्या को सुलझा लेना बुरा नहीं है। इसमें किसीके भला-बुरा बनने की संभावना

नहीं रहती। सबके समाधान की संभावना ही रहती है।"

: ६२ :

ऐसा अपूर्ण बापू हूं

खूब प्रयत्न करने पर भी जब बलवन्तसिंह का मन मगनवाड़ी में नहीं लगा, तो उन्होंने घर जाने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन जाने की बात थी। रसोईघर का चार्ज अमतुस्सलामबहन ने ले लिया था। बलवन्तसिंह ने उनसे रास्ते के लिए भाखरी बनाने की बात कही। वह तेल नहीं खाते थे। इसलिए घी का प्रयोग करने को कहा और साथ में आम रखने का आदेश भी दिया। अमतुस्सलाम बहन ने पूछा, "भाखरी कितनी चाहिए?"

बलवन्तसिंह ने कहा, "चौबीस घंटे का रास्ता है। दो समय खाने को चाहिए।"

बहन ने चौबीस घंटे का अर्थ किया चौबीस भाखरी और वह गांधीजी के पास जाकर बोली, "बलवन्तसिंह चौबीस भाखरी चाहता है। घी का मोवन देने को कहता है। साथ में आम भी मांगता है।"

यह सुनकर गांधीजी को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने बलवन्तसिंह को बुलाकर कैफियत तलब की। बलवन्तसिंह ने हँसकर कहा, "बापूजी, चौबीस भाखरी की बात तो मैंने

नहीं कही। हां, घी और आम की बात जरूर कही थी। मैं तेल नहीं खाता और आम तो नाश्ते में मिलता ही है। स्टेशन से मैं कुछ खरीदता नहीं। जेल से छूटते समय कैदी को जो भत्ता मिलता है, उससे अधिक मैंने कुछ नहीं मांगा।"

गांधीजी बोले, "इतने की भी क्या जरूरत है? तुम तो नीम के पत्ते खाकर रह सकते हो। एक-दो दिन भूखे रहने में क्या है? मैं यहां किसीको खाना नहीं देता हूं।"

और उन्होंने कई दृष्टान्त बलवन्तसिंह के सामने रखे। बलवन्तसिंह ने कहा, "मैं तो लोगों को साथ के लिए भी खाना देता था और इसमें मुझे अपनी भूल नहीं लगती।"

गांधीजी उस समय गुजरात जा रहे थे, इसलिए चर्चा आगे नहीं बढ़ी। वहां से लौटकर उन्होंने बलवन्तसिंह के साथ इस विषय पर कई घंटे तक विचार-विनिमय किया, लेकिन न तो बलवन्तसिंह ने अपनी भूल स्वीकार की और न गांधीजी ने उन्हें क्षमा किया। कहा, "अब तुम घर नहीं जा सकते।"

बलवन्तसिंह बोले, "मैं अब आपके पास नहीं रह सकता।"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा मेरे पास नहीं तो मेरे आसपास रहो। बीच-बीच में मुझसे मिलते रहो।"

बलवन्तसिंह बोले, "सत्संग के लिए मुझे किसीके पास नहीं रहना है। कुछ काम सीखना है, तो अलग बात है।"

गांधीजी ने पूछा, "क्या सीखना चाहते हो?"

बलवन्तसिंह ने कहा, "मेरा बुनाई का काम अधूरा है।

वही सीखना चाहता हूं।"

तब यह निश्चय हुआ कि बलवन्तसिंह नालवाड़ी में विनोबाजी के पास जाकर रहें। वहां बुनाई का काम भी चलता है। गांधीजी के पास से जाते हुए बलवन्तसिंह को दुःख तो हुआ, लेकिन क्रोध भी कम नहीं था। गांधीजी के पास या ग्रास-पास रहने का एक साल का करार हुआ था, लेकिन नालवाड़ी में बुनाई का काम व्यवस्थित नहीं चलता था। इसलिए किसीने सुझाया कि सावली चले जाओ। वह गांधीजी से मिलने के लिए महिला-आश्रम पहुंचे। गांधीजी ने हँसकर कहा, "क्यों, दिन गिनते हो ? तीन दिन तो कम हो गये न ?"

बलवन्तसिंह ने कहा, "अपील करने आया हूं।"

गांधीजी बोले, "अच्छा, करो।"

बलवन्तसिंह ने कहा, "नालवाड़ी में बुनाई का काम व्यवस्थित नहीं है। मुझे सावली भेज दीजिये।"

जाजूजी साथ ही घूम रहे थे। गांधीजी ने उनसे बात की और बलवन्तसिंह दूसरे ही दिन सावली के लिए रवाना हो गये। वहींपर एक दिन उन्हें गांधीजी का यह पत्र मिला :

"चिरंजीव बलवन्तसिंह,

चार दिन हुए, जेठालाल अनन्तपुर गये। उनको रास्ते में घी के मोवन की भाखरी चाहिए थी। स्टेशन से वह कुछ लेते नहीं। अमतुस्सलाम ने मुझसे पूछा। मैंने कहा—हां, भाखरी बना दो। तुम्हारा किस्सा याद आया। तुमको मैंने डांटा

था। स्मरण ने मुझे दुःख दिया। जानता हूं, तुम्हारा तो भला ही हुआ, लेकिन मेरा दोष मिथ्या नहीं हो सकता। मेरा हेतु निर्मल था, लेकिन यह बात मुझे मुक्त नहीं कर सकती। क्षमा करना, ऐसा अपूर्ण बापू हूं!

बापू के आशीर्वाद

१५-८-१९३५

: ६३ :

मैं उसे दोषी मानता ही नहीं

दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का एक और दौर समाप्त हुआ। समझौते के बाद गांधीजी ने निश्चय किया कि हमें एशियाटिक आफिस जाकर स्वेच्छा से परवाने ले लेने चाहिए।

इसीके अनुसार सबसे पहले कौम के नेता परवाने लेने के लिए चले। गांधीजी उनमें सबसे आगे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि उनका एक पुराना मवक्किल मीर आलम एशियाटिक आफिस के बाहर खड़ा है। साथ में कुछ और व्यक्ति भी हैं। उसकी ऊंचाई छः फुट से भी अधिक थी। वह दोहरे शरीर का व्यक्ति था। हर काम में गांधीजी से सलाह लेता था, लेकिन आज उसने सलाम तक नहीं किया। मुस्कराया भी नहीं। गांधीजी जैसे ही आफिस की ओर चले, वह भी पीछे-पीछे चला आया। फिर एकाएक बोला, "कहां जाते हो?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं दस अंगुलियों की छाप देकर परवाना लेना चाहता हूं। अगर तुम भी चलोगे तो तुम्हें ऐसा नहीं करना होगा। तुम्हारा परवाना लेने के बाद

ही मैं अपना परवाना लूंगा ।"

लेकिन गांधीजी अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाये थे कि उनकी खोपड़ी पर लाठी का एक प्रहार हुआ । 'हे राम' कहते हुए वह जमीन पर गिर पड़े । मीर आलम और उनके साथियों ने उनपर और भी प्रहार किये, लातें भी मारीं । उनके साथियों पर भी मार पड़ी । तभी शोरगुल मच गया और गोरे लोग वहां इकट्ठे हो गये । भागने का प्रयत्न करते हुए मीर आलम को उन्होंने पकड़ लिया और पुलिस के हवाले कर दिया ।

गांधीजी को उठाकर वे लोग श्री जे० सी० गिब्सन के आफिस में ले गये । होश आने पर पादरी डोक ने पूछा, "आपको कैसा लगता है ?"

गांधीजी हँसकर बोले, "ठीक हूं, लेकिन दांतों में और पसलियों में दर्द होता है । हां, मीर आलम कहां है ?"

डोक बोले, "उसे गिरफ्तार कर लिया गया है ।"

गांधीजी ने तुरन्त कहा, "वह और उसके साथी छूटने चाहिए ।"

डोक बोले, "यह सब तो होता रहेगा । आपका होंठ फट गया है । अगर आप मेरे यहां चलें, तो मैं और श्रीमती डोक आपकी यथाशक्ति सार-संभाल करेंगे ।"

ऐसा ही किया गया । लेकिन गांधीजी को तो परवाना लेने की जल्दी थी । वहां के अधिकारी से उन्होंने कहा, "आप इसी समय जाकर जरूरी कागजात ले आइये और पहला परवाना मुझे दीजिये । मैं आशा रखता हूं कि मेरे पहले

आप किसी और को परवाना नहीं देंगे।"

परवाने का प्रबन्ध करने के बाद गांधीजी ने सरकारी वकील को तार भिजवाया, "मीर आलम ने मुझपर जो हमला किया है, उसके लिए मैं उसे दोषी मानता ही नहीं। मैं नहीं चाहता कि उसपर फौजदारी का मुकदमा चले। मैं आशा करता हूं कि मेरी खातिर आप उसे छोड़ देंगे।"

और सचमुच उसी समय उसे छोड़ दिया गया। यह दूसरी बात है कि गोरों के कहने से उसे फिर गिरफ्तार किया गया और सजा दी गई।

: ६४ :

अच्छा व्रत लिया

भारत के स्वाधीन होने के कुछ महीने पहले गांधीजी विश्राम के लिए मसूरी गये थे। वहां उनके साथ श्री महावीर त्यागी भी थे। उनका तो वह इलाका ही था। एक दिन गांधीजी धूप में चटाई पर कुछ लिख रहे थे कि त्यागीजी ने एकान्त पाकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये। दो क्षण गांधीजी ने त्यागीजी की ओर देखा फिर पूछा, "आज तूने ऐसी बेवकूफी क्यों की ? पहले तो ऐसा नहीं करता था।"

त्यागीजी सहसा कुछ उत्तर न दे सके। कई क्षण बाद हाथ जोड़कर बोले, "इस मानस गात को पुनीत चरण छूने का कभी साहस ही न हो सका।"

गांधीजी ने पूछा, "तो आज कैसे हुआ ?"

त्यागीजी ने उत्तर दिया, "मैंने एक प्रतिज्ञा की है, बापू ! बरसों से प्रयत्न कर रहा था, परन्तु आत्मबल की कमी के कारण सफल नहीं हो पा रहा था। प्रतिज्ञा की थी कि झूठ नहीं बोलूंगा, सिगरेट नहीं पिऊंगा, गुस्सा नहीं करूंगा, साला कहने की आदत छोड़ दूंगा, दैनिक व्यायाम करूंगा और चरखा कातूंगा। लेकिन आज भी झूठ बोलता हूं, सिगरेट पीता हूं, गुस्सा करता हूं, साला कहने की आदत भी नहीं छूटी, न चर्खा चलाता हूं और न व्यायाम करता हूं। लेकिन आज एक छोटी-सी प्रतिज्ञा की है कि जिन हाथों से चरण छुए हैं, उनसे किसीका अनहित न करूंगा। शुभ चरणों के प्रताप से शायद यह निभ जाय।"

यह सुनकर गांधीजी ने आर-पार देखनेवाली अपनी आंखों से मानो त्यागीजी की आत्मा का एक्सरे कर लिया हो। गर्दन हिलाकर बोले, "अच्छा व्रत लिया।"

दो क्षण बाद फिर कहा, "अच्छी प्रतिज्ञा की। इसके बाद तो किसी दूसरी प्रतिज्ञा की आवश्यकता नहीं। एक के साधे सब सध जाता है। तुम्हारा यह व्रत निभ जाने से सम्पूर्ण आत्मा को बल मिलेगा। सिगरेट भी छूट जायगी। अच्छा व्रत लिया। ऐसे तो रोज चरण छू सकते हो।"

●

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्भावित रूप में लिये गए हैं उनकी संख्या लेखकों के नाम सहित साभार नीचे दी जा रही है :

एकला चलो रे (मनुबहन गांधी) ४,

एनकडोट्स फ्रॉम गांधी (एन० शिवराम कृष्ण) १६,

ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) ३०-३२,

गांधी : वैष्णवजन (संकलन) २२,

गांधीजी (संपा० जी० डी० तेंदुलकर) ८,

गांधीजी एज़ वी सॉ हिम (चंद्रशंकर शुक्ल) २१,

गांधीजी की साधना (रा० म० पटेल) ४६,

गांधीजी के पावन प्रसंग (लल्लूभाई मकनजी) ५५,

गांधीजी के संस्मरण (संकलित, आकाशवाणी) ६, १३, १५, १७, १८, २३, २६-२६,

जीवन-प्रभात (प्रभुदास गांधी) ६०,

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास (गांधीजी) ६३,

नमक के प्रभाव से (काकासाहब कालेलकर) ४८, ५०,

बा और बापू की अंतिम झांकी (मनुबहन) १,

बा और बापू की शीतल छाया में (मनुबहन गांधी) ३५,

बापू की छाया में (बलवंतसिंह) ३, ६२,

बापू के आश्रम में (हरिभाऊ उपाध्याय) ५-७, ६१,

बापू के साथ (सुमंगल प्रकाश) १६, ५२,

बापू-स्मरण (शिरीष) २०, ५३, ५४,

महात्मा गांधी : पूर्णाहुति (प्यारेलाल) ४०-४३,

महात्मा गांधी की जय (संकलित) ५८, ५६, ६४,
महात्मा गांधी : सौ वर्ष (संकलित) ५६, ५७,
महादेवभाई की डायरी भाग, ३ (महादेव देसाई) २,
महादेव की डायरी भाग, ४ (महादेव देसाई) ३६-३६
मेरे जेल के अनुभव (गांधीजी) ३३, ३४,
राष्ट्रपिता बापू : (भवानीदयाल संन्यासी) ४४-४७
हरिजन सेवक (सं० महादेव देसाई) १२, २४, २५
हिन्दी नवजीवन (१६२५) १०, ११,

इस माला की पुस्तकें

□

1. १. प्रभु ही मेरा रक्षक है
2. २. संगठन में ही शक्ति है
3. ३. यदि मैं तानाशाह बना
4. ४. त्याग हृदय की वृत्ति है
5. ५. मेरा पेट भारत का पेट है
6. ६. मैं महात्मा नहीं हूं
7. ७. यह तो सार्वजनिक पैसा है
8. ८. हम कभी दम्भी न बनें
9. ९. मेरा धर्म सेवा करना है
10. १०. हे राम ! हे राम !!

सस्ता साहित्य मंडल • श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान • संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है।